

पुस्तक भारती जर्नल



Shri Ganesha Issue January-March 2019

Sandstone Shri Ganesha, in the office of Pustak Bharati, Toronto, Canada.

Photographed by : Ratnakar Narale



पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल



जनवरी-मार्च अंक

Pustak Bharati Research Journal

January-March Issue

Toronto, Canada M2R 3E4
Phone & Fax : (416) 739-8004

pustak.bharati.canada@gmail.com
www.pustak-bharati-canada.com

हिंदी, संस्कृत, कला, संगीत और संस्कृति प्रचार-प्रसारक त्रैमासिक द्विभाषीय शोधपर पत्रिका

A Research Oriented Quarterly International Bilingual e-Journal
for the propagation of Hindi, Sanskrit, Arts, Music and Culture.

मुख्य संपादक : डॉ. रत्नाकर नराले Chief Editor (CEO) : Dr. Prof. Ratnakar Narale - email :
juornal@pustak-bharati-canada.com

सह संपादक : डॉ. राकेश कुमार दूबे Sub Editor (SEO) : Dr. Rakesh Kumar Dubey- email :
info@pustak-bharati-canada.com

पुस्तक भारती की यह त्रैमासिक-द्विभाषीय शोधपरक ई-पत्रिका हिंदी, संस्कृत, भारतीय कला, संगीत एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु टोरंटो, कनाडा से प्रकाशित है। यह कनाडा की सर्व प्रथम हिंदी रिसर्च पत्रिका है। इस पत्रिका में केवल यथोचित संदर्भ, आरेख और छायाचित्र के साथ लिखे हुए उच्च स्तरीय शोधपरक, ज्ञानपरक अथवा नाविन्यपूर्ण गद्य/पद्य आलेख ही प्रकाशित होंगे। अन्य उत्तम रचनाएँ पुस्तक-भारती की भारत सौरभ पत्रिका में सादर प्रस्तुत की जाएगी। इस मंगल कार्य में हम आपका बहुमूल्य योगदान आमंत्रित कर रहे हैं।

कृपया अपने लेख/आलेख हिंदी में युनिकोड फॉण्ट अथवा अंग्रेज़ी में Times New Roman font में ही प्रेषित करें। साथ में अपना नाम, डाक व ईमेल का पूरा पता, आपका सहर्ष सहयोग अपेक्षित है। आपसे अनुरोध है कि कृपया रचनाएँ कृतिदेव या किसी अन्य फॉण्ट में मत भेजिए। युनिकोड में मुश्किल लगता हो तो <https://microsoft-indic-language-input-tool-conf.software.informer.com/download/> लिंक पर जा कर Typing tool डाउनलोड करें और फिर युनिकोड फॉण्ट में टाइप करके अपनी रचनाएँ/परिचय आदि भेजें।

प्रोत्साहन हेतु दोनों पत्रिकाओं की कुल सदस्यता का वर्तमान सालाना भुगतान केवल \$10.00 US/year रखा है। आजीवन सदस्यता \$100.00 US है।

This unique tri-monthly, bilingual (Hindi and English) research oriented Hindi e-journal is published by Pustak Bharati, Toronto, Canada, for the propagation of Hindi, Sanskrit, Indian Arts, Music and Culture. **This is the first Hindi Research Journal from Canada.** We plan to publish only Research oriented, Knowledge oriented and/or Novelty oriented quality articles with references, diagrams and photographs, as necessary. We feel honored to invite you join us in this divine venture. Other good prose/poetic articles will be published in our Sahitya Saurabh Magazine

Presently for promotion purpose, the Memberships of both the e-Publications is only \$10.00 US/year and Life-time Membership is \$100.00 US to cover our expenses, website hosting and monthly fees. However, you may choose to pay more. If you can not afford \$10.00 US/year, you may choose to pay less or nil.

We hope you will be equally joyful to join and help us in any capacity possible.

PLEASE NOTE :

1. With your **FIRST ARTICLE** you must send your **Full Name, eMail ID, WhatsApp Number, Photograph, Biodata and Mailing Address**. Without this information the article will not be published.

2. Send your Hindi articles in Unicode font and English articles in Times New Roman font as MsWord file only. **DO NOT** send articles on WhatsApp, Messenger, etc.

Please send only the ORIGINAL articles/poems NOT PUBLISHED in ANY MAGAZINE.

3. The articles published in our both publications are the property of Pustak Bharati, but the authors are then free to publish the articles anywhere else also.

4. Pustak Bharati does not endorse or support any advertisement and does not necessarily agrees with the opinions expressed any article. The consequences of the advertisements and the articles are the sole responsibility of the advertisers and authors of the articles.

Dr. Prof. Ratnakar Narale,
CEO Pustak Bharati
Toronto Canada

INDEX

अनुक्रमणिका

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

Pustak Bharati Research Journal

गणेश वंदना

Ratnakar Narale

Rekha Rajvamshi, Australia

1. ऑस्ट्रेलिया में भारतीय - कल से आज तक

Dr. Ratnakar Narale, Toronto, Canada

2. दोहा छंद का अंतरंग

Allgoo, Rajpalsingh, Mauritius, MBE, MSK, President of MLC, 1993, Mauritius

3. History of Indentured Labourers in Mauritius

Dr. N. K. Chaturvedi, Rajasthan, India

4. पंडित रामनारायण मिश्र की शिक्षा को देन : प्रथम अखिल एशियाई शिक्षा सम्मेलन

Satya Narain, Prof Eng., Dr. Ratnakar Narale, Prof.

5. Two Esoteric Legends Of The VĀLMĪKI RĀMĀYANA

Dr. Aruna Sinha, Prof. BHU, Varanasi

6. भारतीय स्वतंत्रता का सच

Shrimati Bhavana Saksena, Surinam

7. संतों की भूमि, हरियाणा

Dr. Dharm Chand Caoubay, Prof. History, GD College, Alwar, Rajasthan

8. इतिहास में 'ग्लोबलाइजेशन' के मंत्र का उदगाता देश भारत

Prof. Krishna Kumar Mishra, Homi Bhabha Centre for Science and Education, Mumbai

9. विटामिन-C, जो स्वास्थ्य के लिए बेहद जरूरी है

Dr. Sunita Pahuja, Central Govt. Rajbhasha Vibhag, New Delhi

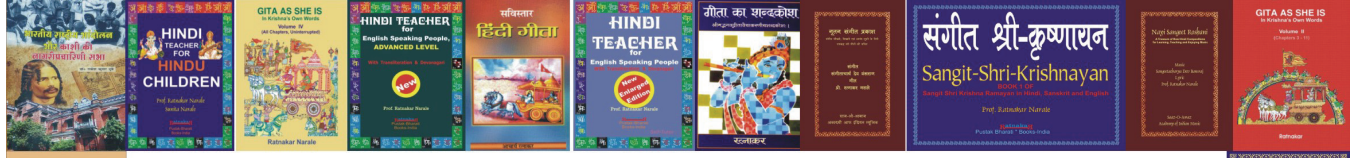
10. प्रवासी भारतवंशियों का भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में योगदान

Dr. Prof. Thankomani Amma, Ex Dean, Keral University, Thiruvanthapuram, Kerla.

11. भारतीय संस्कृति पर बदलते काल और बदलते जीवनमूल्यों का प्रभाव

Prof. Shambhunath Tiwari, Hindi Dept. Aligadh Muslim University, Alighdh

12. हिंदी का भारतीय एवं वैश्विक स्वरूप : यथार्थ और चुनौतियाँ



पुस्तक भारती * Books India

TORONTO, CANADA

Research & Development, Publication, Promotion

Web : www.books-india.com

www.amazon.com

CONTACT

Dr. Rakesh Kumar Dubey

Contact : +91-7355682455

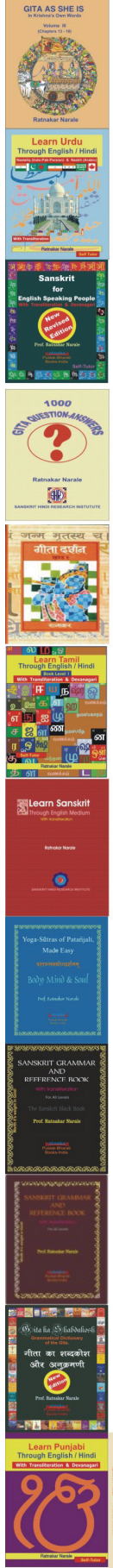
WhatsApp : +91-7844935710

email : rkdhistory@gmail.com

Take Advantage of Books Publishing Service From Canada

- * High Quality Publication from Canada
- * ISBN from Canada, Copyright from Canada
- * Printed in USA, American sizes
- * Published only in 15 days, **Hindi or English**
- * Minimum **15% Royalty**
- * Extra Royalty on extra-ordinary sales
- * Books advertised and promoted on amazon.com, for ever
- * Books **24 to 1200** Pages in Single Volume.
- * Same publication cost from 24 to 400 pages
- * Slightly extra cost for bigger books
- * Free copy/copies presented to the Author
- * Revision and update of books at a small cost

Ratnakar
Pustak-Bharati
Books-India





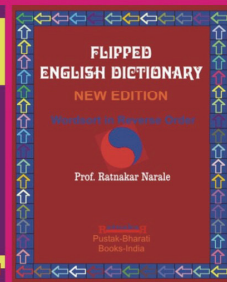
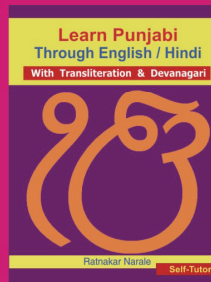
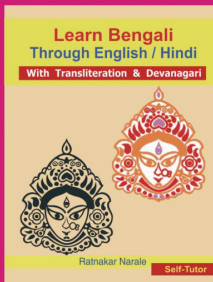
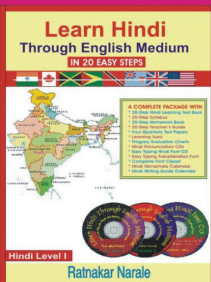
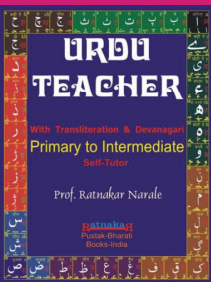
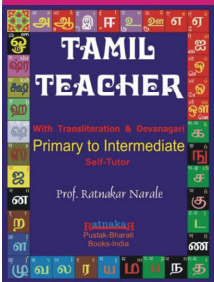
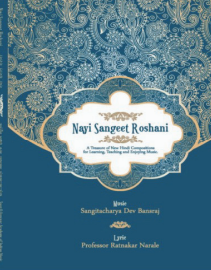
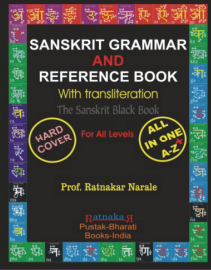
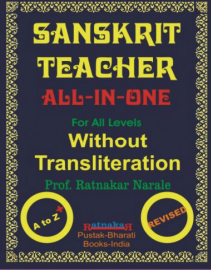
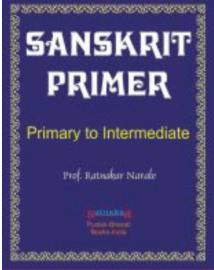
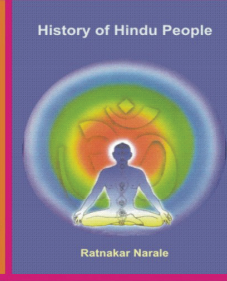
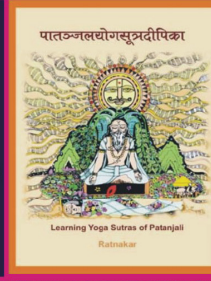
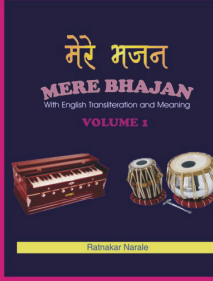
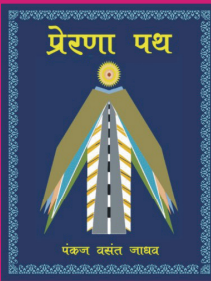
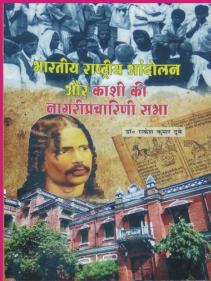
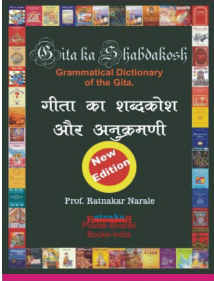
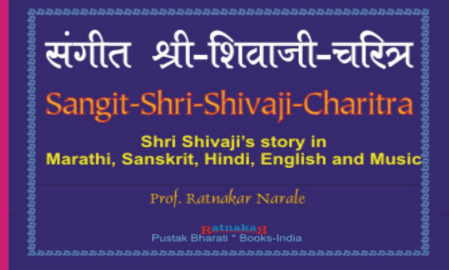
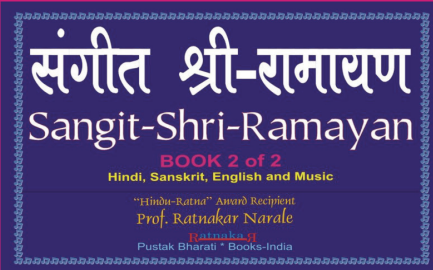
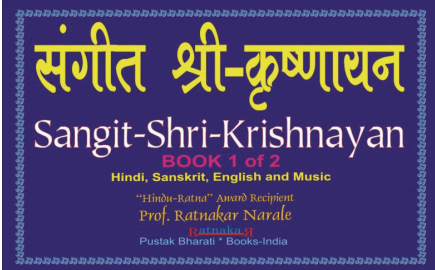
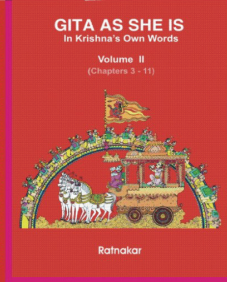
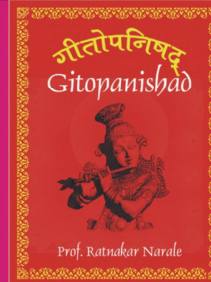
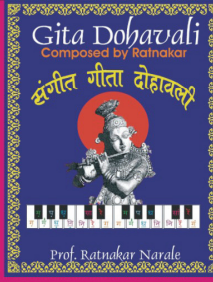
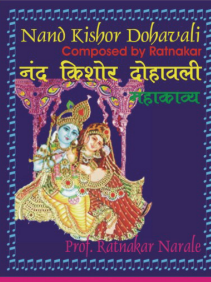
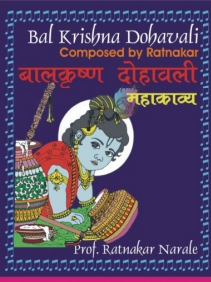
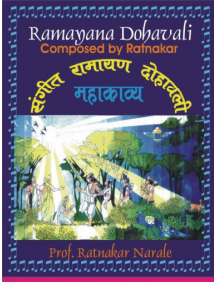
Books-India Publications

Affiliated to Sanskrit Hindi Research Institute, Toronto
 Research & Development, Publication, Promotion
 Toronto, Canada M2R 3E4
 Phone & Fax : (416) 739-8004
books.india.books@gmail.com



Available on [amazon.com](https://www.amazon.com)

CONTACT : Dr. Rakesh Kumar Dubey, rkdhistory@gmail.com, +91 78449 35710



Publishing Books in Hindi and English Language, Canadian ISBN

संवादकीय



सुस्वागतम्! आइए, आप सभी का पुस्तक भारती के अंतर्राष्ट्रीय ई-जर्नल और भारत-सौरभ पत्रिका में सहर्ष हार्दिक स्वागत है. हम सब मिल कर इस युगल ई-पत्रिका का श्रीगणेश करके इसे सफल करने का निश्चय करें और इस मंगल साहित्यिक कार्य से परस्पर लाभ उठाएँ. हमारा सदा ध्यान रहे कि इन दोनों पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाला प्रत्येक लेख-आलेख उच्च स्तरीय, ज्ञान परक और रोचक हो. सभी कविताएँ मुक्त छंद की न हों, बल्की छंदबद्ध काव्य को वरीयता दें. संस्कृत और हिंदी छंदबद्ध काव्य लुप्त होता जा रहा है उनका पुनरुत्थापन करें, उन्हें विशेष प्राधान्यता दें. हमारे गद्य-पद्य लेख हिंदी के, संस्कृत के और उच्च भारतीय संस्कृति के किसी न किसी पहलू को उन्नत करते हों. यही हमारा मानक हो, यही हमारे प्रकाशन का आदर्श हो. भारत सौरभ के अंतर्गत हमें भारतीय- साहित्य सौरभ, सभ्यता सौरभ, संस्कृति सौरभ, संस्कृत सौरभ, छंद-राग-संगीत सौरभ, स्त्री सौजन्य सौरभ, बाल साहित्य सौरभ, आदि सुगंधित सुमनों का सुगंध सर्वत्र प्रसारित करना है. इस महान कार्य में हमें कई चुनौतियों का सामना करना होगा. विविध हुनर और सहायता का योगदान आवश्यक होगा. अगर आप किसी भी तरह से संलग्न होना चाहते हो तो आगे आने की कृपा अवश्य कीजिएगा. हम आपसे केवल एक ईमेल दूर हैं.

Welcome! You are all cordially welcome to the twin e-Magazines, e-Journal and e-Bharat-Saurabh, of Pustak Bharati, Toronto, Canada. Let us work as a team to begin and take the twin literary publications to a grand success for the mutual benefit of all of us. Let us make sure each article published in both the magazines are good quality, interesting and it uplifts some aspect of Hindi, Sanskrit and the rich Indian Culture. Let us make it our standard and our objective. In this great work we will need many skills and aids. If you have anything to offer, please remember we are only an email away.

Dr. Ratnakar Narale,
CEO, Pustak Bharati,
Toronto, Canada

पुस्तक भारती की यह त्रैमासिक-द्विभाषीय शोधपरक ई-पत्रिका हिंदी, संस्कृत, भारतीय कला, संगीत एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु टोरंटो, कनाडा से प्रकाशित है। यह कनाडा की सर्व प्रथम हिंदी रिसर्च पत्रिका है। इस पत्रिका में केवल यथोचित संदर्भ, आरेख और छायाचित्र के साथ लिखे हुए उच्च स्तरीय शोधपरक, ज्ञानपरक अथवा नाविन्यपूर्ण गद्य/पद्य आलेख ही प्रकाशित होंगे। अन्य उत्तम रचनाएँ पुस्तक-भारती की साह्यसौरभ पत्रिका में सादर प्रस्तुत की जाएगी। इस मंगल कार्य में हम आपका बहुमूल्य योगदान आमंत्रित कर रहे हैं। कृपया अपने लेख/आलेख हिंदी में युनिकोड फॉण्ट अथवा अंग्रेज़ी में Times New Roman font में ही प्रेषित करें। साथ में अपना नाम, डाक व ईमेल का पूरा पता, आपका सहर्ष सहयोग अपेक्षित है।

आपसे अनुरोध है कि कृपया रचनाएँ कृतिदेव या किसी अन्य फॉण्ट में मत भेजिए। युनिकोड में मुश्किल लगता हो तो <https://microsoft-indic-language-input-tool-conf.software.informer.com/download/> लिंक पर जा कर Typing tool डाउनलोड करें और फिर यूनिकोड फॉण्ट में टाइप करके अपनी रचनाएँ/परिचय आदि भेजें।

प्रोत्साहन हेतु दोनों पत्रिकाओं की कुल सदस्यता का वर्तमान सालाना भुगतान केवल 10.00 dollars US/year रखा है। आप सक्षम हो तो अधिक भी दे सकते हैं।

आपके लिए 10.00US/year बहुत ज्यादा हों तो आप कम भी दे सकते हैं, या फिर अक्षम हों तो मुफ्त सदस्य भी बन सकते हैं। आजीवन सदस्यता 100.00 US है।

This unique tri-monthly, bilingual (Hindi and English) research oriented Hindi e-journal is published by Pustak Bharati, Toronto, Canada, for the propagation of Hindi, Sanskrit, Indian Arts, Music and Culture. **This is the first Hindi Research Journal from Canada.** We plan to publish only Reseache oriented, Knowledge oriented and/or Novelty oriented quality articles with references, diagrams and photographs, as necessary. We feel honored to invite you join us in this divine venture. Other good prose/poetic articles will be published in our Bharat-Saurabh Magazine.

Presently for promotion purpose, the Memberships of both the e-Publications is only \$10.00 US/year and Life-time Membership is \$100.00 US to cover our expenses, website hosting and monthly fees. However, you may choose to pay more. If you can not afford \$10.00 US/year, you may choose to pay less or nil. We hope you will be equally joyful to join and help us in any capacity possible.

PLEASE NOTE :

1. **With your FIRST ARTICLE** you must send your **Full Name, eMail ID, WhatsApp Number, Photograph, Biodata and Mailing Address.** Without this information the article will not be published.
2. Send your Hindi articles in Unicode font and English articles in Times New Roman font only. Please send your entries in the form of a MsWord File. **DO NOT** send them on WhatsApp, Messenger, etc.
3. The articles published in our publications are the property of Pustak Bharati, but then the authors are free to publish the articles anywhere else also.
4. Pustak Bharati does not endorse any advertisement and does not necessarily agrees with the opinions expressed any article. The consequences of the advertisements and the articles are the sole responsibility of the advertisers and authors of the articles.

गणेश वंदना

डॉ. रत्नाकर नराले



भजन - राग मालकंस, कहरवा ताल, 8 मात्रा

(गणेश वन्दना)

स्थायी

स्वरदा ने मंजुल गाया है, नारद ने साज बजाया है ।
रतनाकर गीत सजाया है ॥

ममगम गसा निसाधनि सा-म- म-, म-गम गसा निसाध नि-सा-म- म- ।

निनिनि-निनि नि-नि निधनिसानि धम ॥

अंतरा-1

तू ही बुद्धि का बल दाता, तू ही ज्ञान का सोता है ।

तू ही ऋद्धि सिद्धि धाता, तूने भाग्य जगाया है ॥

ग- म- ध-नि- सां- सांसां गंनिसां-, नि- नि- नि-नि नि धनिसानि धम- ।

ग- म- ध-नि- सां-सां- गंनिसां-, नि-नि- नि-नि नि-नि धधनिसानि धमगसा ॥

अंतरा-2

तू ही हमरा गुरु अरु माता, तू ही विश्व विधाता है ।

विघ्न विनाशक मंगलकारी, तू गणनायक भाया है ॥

अंतरा-3

तू माथे की रेखा लिखता, तू भगतन को दिखता है ।

आदि देव तू! चिदानंद तू! जग तेरी किरती गाया है ॥

PDF ARTICLES

2

Pustak Bharati Research Journal

मुख्य संपादक : डॉ. रत्नाकर नराले Chief Editor (CEO) : Dr. Ratnakar Narale * सह संपादक : डॉ. राकेश कुमार दूबे Sub Editor (SEO) : Dr. Rakesh Kumar Dubey

1

ऑस्ट्रेलिया में भारतीय - कल से आज तक रेखा राजवंशी, आस्ट्रेलिया



ऑस्ट्रेलिया का नाम लैटिन के एक शब्द ऑस्ट्रेलिज़ से लिया गया है जिसका अर्थ "दक्षिणी" होता है। रोमन समय की पौराणिक कथा "Unknown Land of the South" (Terra australis incognita) और मध्यकालीन भूगोल में भी इसका जिक्र था पर यह महाद्वीप के किसी दस्तावेजी जानकारी पर आधारित नहीं था।

19 वीं शताब्दी की शुरुआत तक, ऑस्ट्रेलिया को "न्यू हॉलैंड" के रूप में जाना जाता था, जिसका नाम पहली बार डच एक्सप्लोरर हाबिल तस्मान द्वारा 1644 में (नीडरलैंड) के रूप में लागू किया गया था और बाद में उसे अंग्रेजी निष्ठ कर दिया गया था। ऑस्ट्रेलिया का नाम खोजकर्ता मैथ्यू फ्लिंडर्स द्वारा लोकप्रिय किया गया था। पहली बार अप्रैल 1817 में 'ऑस्ट्रेलिया' नाम का आधिकारिक तौर पर प्रयोग किया गया था, जब गवर्नर लाक्लेन मक्कारी ने लॉर्ड बाथर्स्ट से ऑस्ट्रेलिया के फ्लिंडर्स के चार्ट की प्राप्ति को स्वीकार किया। दिसंबर 1817 में, मक्कारी ने औपनिवेशिक कार्यालय से सिफारिश करी कि 'ऑस्ट्रेलिया' नाम औपचारिक रूप से अपनाया जाए। 1824 में, एडमिरल्टी ने सहमति जताई कि महाद्वीप को आधिकारिक तौर पर इस नाम से जाना जाना चाहिए। इस नए नाम का पहला आधिकारिक उपयोग हाइड्रोग्राफिक कार्यालय द्वारा ऑस्ट्रेलिया निर्देशिका के 1830 में प्रकाशन के साथ आया था।

ऑस्ट्रेलिया एक साफ़ सुथरा, अपेक्षाकृत युवा देश है जिसका इतिहास चार-पांच हज़ार साल पुराना है। अब भारत और ऑस्ट्रेलिया के सम्बन्ध क्रिकेट, करी (सब्ज़ी) और कोलोनाइजेशन (ब्रिटिश) से आगे बढ़ आगे बढ़ गए हैं।

अक्सर यह प्रश्न उठाया जाता है कि पहली बार भारतीय यहाँ कब आए।

ऑस्ट्रेलिया में भारतियों का आगमन

१७८८ में ब्रिटिश राज्य द्वारा ऑस्ट्रेलिया की स्थापना हुई और ब्रिटेन के अपराधियों को ऑस्ट्रेलिया में बसने के लिए भेजा गया, तो भारत में भी ईस्ट इंडिया कंपनी का राज्य था। पहली बार १७९६ में कलकत्ता में एक जहाज़ का निर्माण हुआ और उसे ऑस्ट्रेलिया भेजा गया। इस जहाज़ में बारह भारतीय भी थे। फिर तस्मानिया से ये लोग लम्बी यात्रा करके सिडनी पहुंचे जिसमें केवल तीन व्यक्ति ज़िंदा रहे, एक भारतीय और दो ब्रिटिश। बाद में मज़दूरों के रूप में भारतीय ऑस्ट्रेलिया लाए गए। प्रमाण हैं कि सिखों और भारतियों ने द्वितीय विश्व युद्ध में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भी दर्जनों भारतियों ने ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड की सैन्य टुकड़ी ANZAC के रूप में भाग लिया, गलीपोली के युद्ध में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। युद्ध के समय गुरखा और सिख बटालियन को ब्रिटिश सैन्य बल के साथ यहाँ भेजा गया। उनके योगदान के बारे में अब तक अधिक चर्चा नहीं हुई थी परन्तु ऑस्ट्रेलिया के इतिहासविद और शोधकर्ता प्रोफ़ेसर पीटर स्टेनली ने इस बारे में महत्वपूर्ण कार्य किया और अब उनकी पुस्तक “Die in Battle, Do not Despair, The Indians on Gallipoli 1915” में इस बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध है। बहुत से ऑस्ट्रेलियन भारतीय सैनिक खच्चर चालक के रूप में रहे। प्रोफ़ेसर स्टेनली के अनुसार तब चार गुरखा और एक सिख बटालियन थी। हज़ारों खच्चर चलाने वाले लोग थे। हालाँकि उनके कोई भी दस्तावेज़ और अनुभव उल्लिखित नहीं हैं।

प्रोफ़ेसर स्टेनली का विचार है कि शायद वे शिक्षित न हों या इस बारे में उन्होंने सोचा न हो। उनके बारे में अन्य सैनिकों ने अपनी डायरी में विस्तृत उल्लेख किया है। ANZAC के सिपाहियों के रिकॉर्ड जैसे डायरी, फोटो और पत्रों से यह स्पष्ट है कि गलीपोली में ऑस्ट्रेलियन भारतीय सैनिकों ने न सिर्फ़ भाग लिया बल्कि जाने भी गंवाई। प्रोफ़ेसर स्टेनली ने भारत, नेपाल और न्यूज़ीलैंड में शोध किया और उनका मानना है कि करीब सोलह हज़ार भारतीय सैनिकों ने गलीपोली में युद्ध किया और करीब १६०० गंभीर रूप से घायल हुए या अपने प्राण गंवा बैठे। ब्रिटिश सैनिकों ने करम सिंह नाम के एक बहादुर सैनिक का उल्लेख किया है जो घायल होने के बाद भी लड़ता रहा। एक मशहूर सिपाही जॉन सिम्पसन कर्क पैट्रिक, जो भारतीय खच्चर चालकों के साथ रहता था, ने कई जगह उल्लेख किया है कि कैसे भारतीय सैनिक ताज़ा चपाती और करी (सब्ज़ी, मांस) पकाते थे, और वह स्वाद लेकर उन्हें खाता था।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, बेन शिफली की ऑस्ट्रेलियाई सरकार ने भारत की आजादी का समर्थन किया। बाद में, प्रधानमंत्री रॉबर्ट मेन्ज़ीस के समय में ऑस्ट्रेलिया ने गणराज्य के रूप में भारत को राष्ट्रमंडल राष्ट्रों में सम्मिलित करने का समर्थन किया। 1950 में, मेन्ज़ीस भारत आने वाले पहले ऑस्ट्रेलियाई प्रधान मंत्री बने, जहाँ उन्होंने गवर्नर जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी और प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू से मुलाकात की। भारत ने पहली बार 1941 में ऑस्ट्रेलिया सिडनी में एक व्यापार कार्यालय की स्थापना की।

2014 में प्रधानमंत्री टोनी एबट ने भारत की यात्रा की। बाद में उसी वर्ष नरेंद्र मोदी ने ऑस्ट्रेलिया की यात्रा की। वे 28 वर्षों में पहले भारतीय प्रधान मंत्री थे जो ऑस्ट्रेलिया आए थे और इससे दोनों देशों के संबंध प्रगाढ़ हुए, और 2017 में मैल्कम टर्नबुल की यात्रा ने इस रिश्ते की प्रगति को जारी रखा।

आज स्थिति बदल गई है, भारत दुनिया की सबसे बड़ी और सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। भारतीय बहुराष्ट्रीय निगम जैसे अडानी और जी वी के कम्पनियां ऑस्ट्रेलिया के संसाधन क्षेत्र में अरबों डॉलर लगा रही हैं। भारत विदेशी छात्रों का दूसरा सबसे बड़ा स्रोत है जबकि पहले नंबर पर चीन है। भारत और ऑस्ट्रेलिया में दो-तरफा पर्यटन तेजी से बढ़ रहा है।

मई 1992 में ऑस्ट्रेलियाई सरकार ने पारस्परिक जागरूकता और सहयोग को बढ़ावा देने के लिए Australia India Council ऑस्ट्रेलिया-भारत परिषद (ए आई सी) की स्थापना की। ऑस्ट्रेलिया -भारत परिषद (ए आई सी) कैनबरा में

एक सचिवालय द्वारा प्रबंधित किया जाता है, जबकि नई दिल्ली में ऑस्ट्रेलियाई उच्चायोग भारत में ए आई सी की गतिविधियों का प्रबंधन करता है। वर्तमान समय में सिडनी और मेलबर्न में भारतीय दूतावास हैं। कैनबरा में भारत का उच्चायुक्त है।

ऑस्ट्रेलियन मैरीटाइम संग्रहालय की प्रदर्शनी

जून 2013 में सिडनी के 'ऑस्ट्रेलियन मैरीटाइम संग्रहालय' में एक प्रदर्शनी लगी जिससे पता लगा कि किस तरह ईस्ट इंडिया कंपनी ने दो सौ साल पहले भारत से ऑस्ट्रेलिया के पोर्ट जैक्सन में कई अभियुक्त भेजे, जिन्होंने छोटे मोटे अपराध किये थे। देखा जाए तो तबसे भारत और अन्य एशिया के अन्य देशों के मध्य आर्थिक, सामरिक और सांस्कृतिक संपर्कों की शुरुआत हुई।

1813 और 1833 के बीच, 250 से अधिक जहाजों ने कलकत्ता और मद्रास के बंदरगाहों को यात्रा की। यूरोप से आने वाले जहाज आम तौर पर रम, सूती वस्त्र, साबुन, चीनी, चावल और चाय, साथ ही साथ चीनी मिट्टी के बरतन, कपड़े और चमड़े के सामान भी लाते थे। यूरोप से आने वाले ये जहाज ऑस्ट्रेलिया में अपना माल उतारते थे और फिर भारत जाते थे, जहां वे भारतीय माल ब्रिटेन लाकर लाभ कमाते थे।

1881 में जनगणना के रिकॉर्ड के अनुसार भारत में पैदा हुए लोगों की संख्या 998 थी जो 1891 में बढ़कर 1700 के ऊपर हो गई थी। काम की तलाश में भारतीय यहाँ आने और बसने लगे थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी में अनेक भारतीय विक्टोरिया राज्य में आए। कुछ फेरीवाले अपनी बंद बगधी में शहर शहर सामान जैसे खाद्य पदार्थ, मसाले, सिल्क, जेवर, आदि वस्तुएं बेचने लगे।

ये फेरीवाले अपने वेगन में बहुत दूर-दूर यात्रा करते थे, जिन्हें एक या अधिक घोड़ों द्वारा खींचा जाता था। कुछ फेरीवाले बहुत दूर तक जाकर ये सामग्री बेचने जाते थे। और ऑस्ट्रेलियन परिवार इनकी बड़ी इज़्जत करते थे। फेरीवाले अधिकतर पंजाब से थे, 1920 में ऐसे एक फेरीवाले का प्रमाण है जो सामान बेचा करता था। ये फेरीवाले गाँवों को शहरो से जोड़ने का महत्वपूर्ण काम कर रहे थे। कई बार सामान बेचने के अतिरिक्त ये सूचना भी एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाते थे। लैन कैना और क्रिस्टल जॉर्डन ने इस बारे में बहुत शोधकार्य किया है। विक्टोरिया के संग्रहालय और ऑस्ट्रेलिया के राष्ट्रीय पुस्तकालय में इन 'हॉकर्स' फेरीवालों की अनेक तस्वीरें हैं।

ऑस्ट्रेलिया क्षेत्रफल में लगभग ढाई गुना है और यहाँ एक शहर से दूसरे शहर मीलों का फासला है। पुराने ज़माने में सड़के न होने की वजह से १८६० में सामान इधर से उधर पहुँचाने के लिए ऊँट और ऊँट सवार भी लाये गए जो कि पाकिस्तान फ्रंटियर इलाके से थे जिनको अफगानी केमेलीयर के नाम से जाना जाता है। इन्हीं अफगानी केमेलीयर के नाम से एक प्रसिद्ध रेल लाइन है जिसे घान रेल का नाम दिया गया है। ये रेल एडिलेड से डार्विन तक ऑस्ट्रेलिया के बीचोंबीच चलती है। जबकि १८६० से लेकर १९२० तक यही अफगानी ऊँटों पर सामान लाद कर मीलों का सफर तय करते थे।

भारतीय धीरे-धीरे श्रमिक के रूप में आए और अनेक सिख परिवार वुलगुलगा नाम के शहर में बस गए। ये लोग गन्ने के खेतों में काम करने के लिए लाये गए थे। 1940 के दशक के दौरान बहुत से भारतीय ऑस्ट्रेलिया में बेहतर भविष्य की आकांक्षा से आए और यहाँ बस गए। धीरे-धीरे संख्या बढ़ती गई और आज यहाँ के अनेकों विश्वविद्यालयों में भारतीय छात्र पढ़ने आते हैं। ऑस्ट्रेलिया भी भारत की तरह एक बहु सांस्कृतिक देश है, जिसका विकास पिछले ढाई सौ वर्षों में हुआ है। इसके अतिरिक्त यहाँ भारतीय किसान केले की फसल भी उगाते हैं।

जनगणना

2016 के जनगणना आंकड़ों के अनुसार ऑस्ट्रेलिया की कुल जनसँख्या 25 मिलियन है, जिसका 1.9% हिस्सा भारतीय हैं। भारतीय जनसंख्या जनगणना 2011 की तुलना में 95,362 से बढ़कर 455,389 हो गई है। यहाँ की जनता में ब्रिटेन और न्यूज़ीलैंड में पैदा हुए लोगों की संख्या सबसे बड़ी है। उसके बाद चीन और भारत से आए हुए लोग हैं। आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार प्रवासियों में चीन के बाद भारतियों का नंबर आता है।

2016 की जनगणना अधिकांश भारतीय-ऑस्ट्रेलियाई हिंदू हैं जिनकी संख्या 295,362 है। जबकि अन्य भारतीय सिख, इस्लाम, ईसाई, बौद्ध, जैन, जोरोस्ट्रियन और अन्य धर्मों का पालन करते हैं। अगली पीढ़ी तक अपनी भाषा, धर्म और संस्कार पहुँचाने का प्रयास भारतवंशी करते रहे और आज अनेकों मंदिर, गुरुद्वारे और विद्यालय इसी बात का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

सिडनी के उपनगर 'ऑबर्न' में स्थित, श्री मंदिर ऑस्ट्रेलिया में पहला हिंदू मंदिर है। हिंदू समुदाय की धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इस मंदिर की स्थापना 1977 में की गई थी, जब कि सिख समुदाय के प्रयास से पहला सिख गुरुद्वारा वुलगुलगा शहर में 1969 में बनाया गया। दक्षिण ऑस्ट्रेलिया के 'अफगान' कहे जाने वाले भारतीय मुसलमानों ने 1882 के आसपास (कुछ स्रोतों के अनुसार 1861 में) मैरी मस्जिद का निर्माण किया।

ऑस्ट्रेलियन एबोरीजनल और मूल भारतीयों में समानता

नए अनुसन्धान ने स्पष्ट किया है कि ऑस्ट्रेलियन एबोरीजनल और मूल भारतीयों में समानता है। यायावर भारतीय शिकारी यहाँ पहुंचे होंगे और बस गए होंगे उन्ही की प्रजाति एबोरीजनल यानि आदिवासी रूप में विकसित हुई होगी। यह बात उस अध्ययन पर आधारित है जिसके अनुसार देशज भारतीय और ऑस्ट्रेलिया के आदिवासियों के डी एन ए और भाषा विकास के तरीके में समानता पाई गई है। ये भी पाया गया है कि 'डिंगो' एक विशेष जाति के कुत्तों को भी भारत से यहाँ लाया गया।

भारतीय पुरातत्व मानव विज्ञानी डॉक्टर राघवेंद्र राव के अनुसार ऑस्ट्रेलियन एबोरिजनल्स और दक्षिण भारतीय आदिवासियों के बीच में आनुवंशिक समानताएं हैं। २०११ के अध्ययन के अनुसार उनकी शारीरिक बनावट में समानता

को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि करीब पचास हज़ार साल पहले ये लोग यहाँ आए। उनका मानना है कि ये लोग अफ्रीका से भारत होते हुए ऑस्ट्रेलिया पहुंचे होंगे।

ऑस्ट्रेलिया में भारतीय विद्यार्थी

भारतीय व्यापार कार्यालय ऑस्ट्रेलिया में 1941 में ही स्थापित कर दिया गया था।

कोलंबो योजना के हिस्से के रूप में, कई भारतीय छात्रों को 1950 और 1960 के दशक में ऑस्ट्रेलिया आने और अध्ययन करने के लिए प्रायोजित किया गया था। 1960 के दशक के अंत में प्रतिबंधों को आसान बनाने से गैर-यूरोपीय भारतीयों की भी ऑस्ट्रेलिया में बढ़ोतरी हुई।

1998 में भारतीय आप्रवासियों का बड़ी संख्या में ऑस्ट्रेलिया में आगमन हुआ। ऑस्ट्रेलिया के कई विश्वविद्यालयों में भारतीय छात्रों का में प्रवेश होने लगा। भारतीय प्रवासी बेहद शिक्षित हैं, उच्च योग्यता प्राप्त हैं और उन्होंने इस देश में अपनी जगह बनाई है। ऑस्ट्रेलिया के विकास और निर्माण में भारतीयों के अस्तित्व और प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता। 2011-12 में, भारतीय ऑस्ट्रेलिया के लिए स्थायी प्रवासन का सबसे बड़ा स्रोत थे। 2017 में ऑस्ट्रेलिया में छात्र वीज़ा पर करीब 60,000 भारतीय छात्र यहाँ आए।

मई और जून 2009 में, भारतीय अंतर्राष्ट्रीय छात्रों के खिलाफ नस्लीय प्रेरित हमले और पुलिस ढीले रवैये ने विरोध प्रदर्शन को जन्म दिया। मेलबर्न और सिडनी दोनों में रैली आयोजित की गई। भारत सरकार के प्रतिनिधियों ने चिंता व्यक्त करने के लिए ऑस्ट्रेलियाई सरकार से मुलाकात की और अनुरोध किया कि भारतीयों की रक्षा की जाए। प्रधान मंत्री केविन रड ने अफसोस व्यक्त किया और हमलावरों को न्याय में लाया जाने के लिए बुलाया। संयुक्त राष्ट्र ने इन हमलों को 'विचलित करने वाला' कहा और मानव अधिकार आयुक्त पिल्लै, जो खुद भारतीय डायस्पोरा के सदस्य थे, ने ऑस्ट्रेलिया से मामलों की जांच करने के लिए कहा। रड सरकार ने नस्लीय हमले के कमीशन को प्रोत्साहित करने के लिए एक टास्क फोर्स की स्थापना की। समूह की अध्यक्षता राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार डंकन लेविस ने की थी।



1996 की जनगणना के परिणामों के अनुसार ऑस्ट्रेलिया की 28% जनसँख्या विदेशों में पैदा हुई। जिसमे से की कुल जनसँख्या का 1.9 प्रतिशत, 468,800 लोग भारत में पैदा हुए। नई जनगणना के परिणाम यह भी दिखाते हैं कि ऑस्ट्रेलिया में बोली जाने वाली भारतीय भाषाओं में हिंदी भाषियों की संख्या सर्वाधिक है। अधिकतर ऑस्ट्रेलियाई भारतीय उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। 2016 में यह खुलासा किया गया था कि ऑस्ट्रेलिया में 54.6% भारतीय प्रवासियों को स्नातक की डिग्री या उच्च शैक्षिक डिग्री है, 2011 में ऑस्ट्रेलिया के राष्ट्रीय औसत 17.2% की तुलना में तीन गुना अधिक है, जिससे उन्हें ऑस्ट्रेलिया में सबसे शिक्षित प्रवासी समूह बना दिया गया है।

ऑस्ट्रेलिया की रंगभेद नीति और प्रजातिवाद

ऑस्ट्रेलिया कुछ पिछले वर्षों से विवाद के दायरे में घिरा रहा है। भारतीय छात्रों की मार पिटाई और उनके साथ हुई हिंसात्मक घटनाओं के कारण भारतीय ऑस्ट्रेलिया के प्रति अपने मन में नफरत पाल बैठे हैं। तो क्या वाकई में ऑस्ट्रेलिया में प्रजातिवाद है? हालांकि किसी भी तरह के विभेदीकरण को लेकर कड़े नियम बने हुए हैं जैसे 'एंटी डिसक्रिमिनेशन एक्ट' आदि।

ऑस्ट्रेलिया में तीस साल पहले आए हुए भारतीयों का मानना है कि अब स्थिति सुधरी है, परन्तु अपराध बढ़ा है और अपराध के चलते ही भारतीय छात्रों के साथ इस तरह की घटनाएँ हुई हैं। कुछ लोग ये भी मानते हैं कि ये प्रजातिवाद या रंग विभेद खुले रूप में तो नहीं है पर जब नौकरी में ऊँचे ओहदे पर प्रमोशन की बात होती है तो श्वेत लोगों को ही प्राथमिकता दी जाती है। तो आइये देखें कि ऑस्ट्रेलिया में इस रंगभेद नीति और प्रजातिवाद की जड़ कहाँ है?

'व्हाइट ऑस्ट्रेलिया पोलिसी' यानी 'श्वेत ऑस्ट्रेलिया नीति' की जड़ें 1901 तक जाती हैं, जब

ऑस्ट्रेलिया एक फेडरेशन बना तो कुछ ऐसी नीतियां बनाई गईं जिसके तहत नॉन-व्हाइट यानि अश्वेत लोगों को ऑस्ट्रेलिया में प्रवेश की अनुमति नहीं दी गई और यह नीति 1901 से लेकर 1973 तक लागू रही। यह एक ऐसी नीति थी जिससे दुनिया भर में ऑस्ट्रेलिया के प्रति रोष पैदा हो गया और साथ ही ऑस्ट्रेलिया पर एक 'रेसिस्ट' देश का ठप्पा लग गया।

जब हम ऑस्ट्रेलिया के इतिहास पर नज़र डालें तो पता लगेगा कि इस अश्वेत नीति के कई कारण थे। पहला कारण था ऑस्ट्रेलिया में सोना पाया जाना, 1851 में जब पहली बार न्यू साउथ वेल्ज़ में सोना पाया गया और इसके छः महीने बाद विक्टोरिया में और बाद में अन्य स्थानों में भी स्वर्ण पाए जाने की खबर जब आग की तरह फैली तब दुनिया भर के लोग ऑस्ट्रेलिया आ गए। इनमें मुख्य थे चीन से आए लोग और बाद में दक्षिण समुद्री द्वीपों से आये लोग। दूसरा कारण था कि मजदूरों में आपसी मतभेद हो गया, क्योंकि दूसरे देशों से आए मजदूरों ने कम वेतन लेकर लम्बे समय तक काम करना शुरू कर दिया था।

और तीसरा प्रमुख कारण था कि कुछ राष्ट्रवादी लोगों ने उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में प्रजातिवाद का वातावरण पैदा कर दिया था, जिसके कारण 1901 में एक कानून 'इमिग्रेशन रेसट्रिक्शन एक्ट' पास हुआ जिसका मकसद अप्रवासन पर कुछ प्रतिबन्ध लगाना था जिससे ऐसे लोगों के आने पर रोक लगाई जा सके जो असामान्य नज़र

आते थे या जो किसी संक्रामक बीमारी से ग्रसित थे या जो सरकार पर एक बोझ बन सकते थे या जिनका चरित्र संदिग्ध था। इस एक्ट में वेश्याओं, अपराधियों और मजदूरों के आने पर भी प्रतिबन्ध लगाए गए। उनके अप्रवासन को रोकने के लिए एक ऐसा डिक्टेसन टेस्ट यानि अनुवाद की परीक्षा उन्हें दी जाने लगी जो बहुत कठिन थी और अप्रवासन के इच्छुक लोगों को ये टेस्ट ऐसी भाषा में दिए जाते थे जो उन्हें ज्ञात ही नहीं थी। इन लिखित परीक्षणों का एकमात्र प्रयोजन था अश्वेत, अवांछित लोगों को ऑस्ट्रेलिया में प्रवेश की अनुमति न देना। इन सख्त मापदंडों का उस वक्त ऑस्ट्रेलिया वासियों ने स्वागत किया और इसकी भरपूर सराहना भी की। यहाँ तक कि 1919 में ऑस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री विलियम मौरिस ह्यु ने कहा 'ये हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि है'।



बाद में ऑस्ट्रेलिया की इस नीति का समापन होने में 25 साल लग गए और इसके समापन की शुरुआत तब हुई, जब १९४९ में लिबरल और कंटी दलों का मेल हुआ और तत्कालीन इमिग्रेशन मंत्री हैरोल्ड होल्ट ने पहली बार आठ सौ अश्वेत लोगों को ऑस्ट्रेलिया में ही रहने की आज्ञा दी और जापान युद्ध की विधवा स्त्रियों को वापिस आने की अनुमति दी। इसके बाद के सालों में धीरे-धीरे ऑस्ट्रेलिया में इस श्वेत नीति में सकारात्मक बदलाव किये गए और अंततः 1973 में जब नई लेबर सरकार बनी तो इस नीति को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया।

पर नवम्बर 2017 में स्कैनलॉन फाउंडेशन ने एक रिपोर्ट जारी की जिसमें भारत में पैदा हुए 39 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा की उन्होंने ऑस्ट्रेलिया में भेदभाव का अनुभव किया है। इस प्रकार का यह सबसे बड़ा अध्ययन, मेलबोर्न के मोनाश विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं द्वारा आयोजित किया गया था। 2017 के सर्वेक्षण में, 63% लोगों ने सहमति जताई कि 'कई अलग-अलग देशों के अप्रवासियों को स्वीकार करना ऑस्ट्रेलिया को मजबूत बनाता है, जबकि 30% लोग इस बात से असहमत थे।

रिपोर्ट में कहा गया है, "जनसांख्यिकीय परिवर्तन की परिमाण के बावजूद, स्कैनलॉन फाउंडेशन सर्वेक्षणों में अप्रवासन और सांस्कृतिक विविधता की स्वीकृति के स्तर में स्था पाई जाती है।"

रिपोर्ट लेखक, प्रोफेसर एंड्रयू मार्कस ने कहा, 'सर्वेक्षणों में देश के प्रवासन कार्यक्रम और बहुसांस्कृतिकता की नीतियों के लिए बहुत ठोस समर्थन रहा है।'

457 वीज़ा टेम्पररी और स्किल शॉर्टेज TSS वीज़ा

18 अप्रैल 2017 को, माननीय माल्कम टर्नबुल सांसद, ऑस्ट्रेलिया के प्रधान मंत्री और माननीय पीटर एंडटन और सांसद माननीय पीटर डटन सांसद ने संयुक्त रूप से घोषणा की कि Temporary work Visa टेम्पररी कार्य वीजा, और सबक्लास 457 वीज़ा समाप्त कर दिया जाएगा और इसे टी एस एस में बदल दिया जाएगा। पूरी तरह से नया TSS टेम्पररी स्किल शॉर्टेज वीजा वास्तविक कौशल की कमी को पूरा करने में मदद करेगा। सबक्लास 457 वीज़ा को इस्तेमाल करने वाले विदेशियों में अधिकतम भारतीय थे। मार्च 2018 को ऑस्ट्रेलिया ने भारतीयों द्वारा बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाने वाला नियोजित - प्रायोजित 457 वीजा कार्यक्रम समाप्त कर दिया। इसकी जगह नया टेम्पररी स्किल शॉर्टेज वीजा लाया गया, जिसमें अंग्रेजी भाषा में उच्च स्तर की दक्षता और उच्च रोजगार कुशलता होना अनिवार्य है।

आधुनिक ऑस्ट्रेलिया

ऑस्ट्रेलिया अनेक देशों से आकर बसे हुए लोगों का देश है। ऑस्ट्रेलिया के प्रथम निवासी थे एबोरीजनल और टोरेस स्ट्रेट आयलैंडर्स, जो यहाँ अनुमानतः 40 हजार से साठ हजार वर्ष पहले आकर बस गए थे। ऑस्ट्रेलिया में पहले यूरॉपियन आए, तब से अब तक 50 से भी अधिक देशों के लोग यहाँ बस चुके हैं।

मुख्य रूप से यूके निवासी, इटालियन, न्यूजीलैंडर, चीनी, वियतनामी, भारतीय, फिलीपीनी, ग्रीक, दक्षिण अफ्रीका के लोग, लेबनानी, मलेशियन आदि लोग हैं। इसके अलावा पाकिस्तानी, श्रीलंकन, फीजियन, हांगकांग, सर्बिया, इंडोनेशिया, अमेरिका और पोलैंड आदि अनेक देशों के लोग भी हैं।

यहाँ की संस्कृति बहुसांस्कृतिक है। अनेक समुदाय के लोगों के आ जाने से जीवनशैली में विविधता है। हर देश का खाना उपलब्ध है। पूजा के स्थलों और प्रार्थना कक्षों में जाने की अनुमति है। ऑस्ट्रेलिया में सरकारी प्राथमिक पाठशालाओं में ईसाई धर्म के साथ अन्य धर्मों जैसे हिन्दू धर्म और इस्लाम की कक्षाओं की भी सुविधा है। क्रिसमस, ईस्टर के अलावा रमजान, ईद, दिवाली, चाइनीज न्यू ईयर पर भी रौनक रहती है। अब तो इफ्तार और दिवाली की दावतें संसद भवन में भी होने लगी हैं। हर व्यक्ति को अपना त्योहार मनाने की छूट है।



यहाँ हर समुदाय के लोगों को एक हंसी का नाम दे दिया गया है, जो सामने नहीं बोला जाता, पर यह उनकी पहचान के आधार पर है। भारतीय लोगों को 'करीमंचर्स' यानी सब्जी खाने वाला कहा जाता है। भारतीय घर मसालों की महक से वे दूर से पहचाने जाते हैं। ऑस्ट्रेलिया में अधिकतर भारतीय 'करी कार' यानी 'टोयोटा कैमरी' खरीदना चाहते हैं। ऑस्ट्रेलिया में भारतीय लोगों की छवि अच्छी है, उन्हें मेहनती माना जाता है।

भारतीय भोजन यहाँ खासा लोकप्रिय है। बॉलीवुड डांस और योग भी बेहद प्रचलित है। हिंदी, पंजाबी और तमिल भाषा एक विषय के रूप में पढ़ी जा सकती हैं। सामुदायिक विद्यालयों में ये भाषाएं सप्ताहांत में सिखाई जाती हैं। हालाँकि कुछ ऑस्ट्रेलियन एक्टरों ने बॉलीवुड की फिल्मों में सफलता प्राप्त की परन्तु 1990 के दौरान ऑस्ट्रेलिया बॉलीवुड फिल्मों की शूटिंग के लिए बहुत लोकप्रिय हो गया। अनेक फिल्मों का छायांकन ऑस्ट्रेलिया की खूबसूरत वादियों में किया जाता रहा है। यहाँ विभेदीकरण को लेकर सख्त नियम बने हुए हैं। नौकरी में या कार्यस्थल में किसी तरह का पक्षपात होने की संभावना कम ही है, अगर हो रहा है तो शिकायत की जा सकती है।

भारत और ऑस्ट्रेलिया के बीच सम्बन्ध

वर्तमान समय में भारत ऑस्ट्रेलिया के बीच मधुर सम्बन्ध हैं। आजादी से पहले, ऑस्ट्रेलिया और भारत ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा थे। दोनों राष्ट्रमंडल राष्ट्रों के सदस्य हैं। वे राजनीतिक, आर्थिक, सुरक्षा, भाषाई और खेल संबंधों को भी साझा करते हैं। ऑस्ट्रेलिया ने भारत को अंतरराष्ट्रीय साझेदारी में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। दोनों सरकारें मानती हैं कि विभिन्न क्षेत्रों में आपसी सहयोग के लिए पर्याप्त अवसर और क्षमता है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने जी-20 शिखर सम्मेलन के बाद ऑस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री टोनी एबट के अतिथि के रूप में 16 से 18 नवंबर 2014 तक ऑस्ट्रेलिया का आधिकारिक दौरा किया।



प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने प्रधानमंत्री एबट के साथ कई विषयों पर चर्चा की। उन्होंने कैनबरा, ब्रिस्बेन, सिडनी और मेलबोर्न का दौरा किया और राजनीतिक नेताओं, शिक्षाविदों, व्यवसायियों, खिलाड़ियों से मुलाकात की और ऑस्ट्रेलिया में भारतीय समुदाय के लोगों को सम्बोधित किया। भारत और ऑस्ट्रेलिया एक सुरक्षित और समृद्ध क्षेत्र बनाने के लिए मिलकर कार्य कर रहे हैं जिसमें प्रमुख क्षेत्रीय मंच जैसे पूर्वी एशिया शिखर सम्मलेन भी सम्मिलित है। दोनों देशों ने ASIAN के साथ अपने जुड़ाव को रेखांकित करते हुए Indian Ocean Rim Association for Regional Cooperation को मजबूत करने और मजबूत मानवीय एवं आपदा राहत क्षमताओं को बढ़ाने, मलेरिया का मुकाबला और क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक भागीदारी द्वारा क्षेत्रीय व्यापार को बढ़ाने के प्रति अपनी कटिबद्धता दोहराई।

आयात निर्यात

भारत में ऑस्ट्रेलिया से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में कोयला, तांबा और सोना शामिल है; भारत से आयात की जाने वाली वस्तुओं में परिष्कृत पेट्रोलियम, मोती और रत्न, और दवाएं शामिल हैं।

वर्ष 2015-16 में भारत और ऑस्ट्रेलिया के बीच 19.4 अरब डॉलर का व्यापार किया गया, जिसमें पिछले दशक में उल्लेखनीय वृद्धि थी। ऑस्ट्रेलियाई निर्यात में कोयला, सब्जियां और सोना शामिल थे, और भारतीय निर्यात में परिष्कृत पेट्रोलियम, दवाएं और व्यापार सेवाएं शामिल थीं। प्रधानमंत्री माल्कम टर्नबुल ने अप्रैल 2017 में भारत यात्रा की। जिसमें उन्होंने घोषणा की कि ऑस्ट्रेलियाई सरकार भारत में ऑस्ट्रेलियाई व्यवसायों के अवसरों की खोज करने के लिए एक स्वतंत्र भारत आर्थिक रणनीति का संचालन करेगी।

इंडिया और ऑस्ट्रेलिया ने एक \$ 100 मिलियन की स्ट्रेटेजिक रिसर्च फंड की स्थापना की है।

शिक्षा और प्रशिक्षण

शिक्षा और प्रशिक्षण क्षेत्र में भी भारत और ऑस्ट्रेलिया सरकारी एजेंसियों और मंत्रालयों के साथ मिल कर काम करते हैं। ऑस्ट्रेलिया और भारत नियमित रूप से कर्मियों और प्रशिक्षण एक्सचेंजों, जैसे लघु और दीर्घकालिक विशेषज्ञ पाठ्यक्रम ऑस्ट्रेलिया और भारत के रक्षा बलों के बीच मजबूत संबंधों का निर्माण करते हैं।

हर साल, ऑस्ट्रेलिया भारतीय सैन्य शैक्षिक संस्थानों में भाग लेने के लिए दो अधिकारियों को भेजता है: एक अधिकारी भारत के रक्षा सेवा कर्मचारी कॉलेज में भाग लेता है, जबकि दूसरा राष्ट्रीय रक्षा कॉलेज में भाग लेता है। भारत सालाना ऑस्ट्रेलिया में अध्ययन करने के लिए दो अधिकारियों को भेजता है, जिसमें ऑस्ट्रेलिया के कमांड और स्टाफ कॉलेज में भाग लेने वाला और दूसरा रक्षा और सामरिक अध्ययन केंद्र में भाग लेता है। 2015 में, एक ऑस्ट्रेलियाई अधिकारी ने गोवा में भारतीय नौसेना के 'लॉन्ग हाइड्रोग्राफी' पाठ्यक्रम में भी भाग लिया। ऑस्ट्रेलिया और भारत ने 2015 में विशाखापत्तनम के तट पर आयोजित पहले औपचारिक द्विपक्षीय नौसेना अभ्यास (AUSINDX) में भाग लिया और अब दोनों देश समुद्री सहयोग बढ़ाने हेतु मिलकर काम करने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

जून 2015 में, भारतीय नौसेना के दो जहाज 'सतपुरा' और 'कामोरता' ने वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया में फ्रीमैन्टल का दौरा किया, फरवरी 2016 में, ऑस्ट्रेलिया के चीफ ऑफ नेवी, रॉयल ऑस्ट्रेलियाई नौसेना का जहाज भी भारतीय नौसेना के अंतर्राष्ट्रीय फ्लीट रिब्यु में भाग लेने के लिए विशाखापत्तनम गया।

क्रिकेट

ब्रिटिश उपनिवेशीकरण के परिणामस्वरूप, क्रिकेट दोनों देशों के बीच एक मजबूत सांस्कृतिक संबंध के रूप में उभरा है। भारत और ऑस्ट्रेलिया दोनों ही देशों के लोग क्रिकेट से प्यार करते हैं। कोई भी मैच हो, दोनों देशों के लोग बड़ी संख्या में उपस्थित होकर अपनी अपनी टीम का समर्थन करते हैं।

इंडो-ओज़ क्रिकेट का रिश्ता 1945-46 से शुरू हुआ, 1945 में, ऑस्ट्रेलियाई सेवा क्रिकेट टीम ने यूरोप से ऑस्ट्रेलिया लौटने के दौरान भारत का दौरा किया, और भारतीय क्रिकेट टीम के खिलाफ खेला। तब लिंडसे हैसेट कप्तान थे, अन्य प्रसिद्ध क्रिकेटर कीथ मिलर और सेसिल पैपर भी इसमें शामिल थे। हालांकि, उन मैचों को टेस्ट स्टेटस नहीं दिया गया था। भारत के आजादी के बाद 1947-48 में देशों के बीच पहला टेस्ट मैच हुआ, जब भारत ने ऑस्ट्रेलिया का दौरा किया और पांच टेस्ट खेले। ऑस्ट्रेलिया ने 4-0 से जीत दर्ज की और परिणामस्वरूप, ऑस्ट्रेलियाई बोर्ड ऑफ कंट्रोल ने भारतीयों को दो दशकों तक वापस आमंत्रित नहीं किया, उन्हें डर था कि एक तरफा प्रतियोगिताओं की एक श्रृंखला दर्शकों के हितों की कमी के कारण वित्तीय नुकसान का कारण बन जाएगी। इस बीच, ऑस्ट्रेलिया ने 1956, 1959-60 और 1964-65 के अंत में भारत का दौरा किया।

तबसे लेकर आज तक भारत और ऑस्ट्रेलिया के बीच अनेको टेस्ट मैच खेले गए हैं। इंडियन प्रीमियर लीग से ऑस्ट्रेलिया-भारत संबंधों की एक नई शुरुआत हुई है, और शेन वॉर्न जैसे ऑस्ट्रेलियाई क्रिकेटर्स, एडम गिलक्रिस्ट और ब्रेट ली

भारतीय लोगों के बीच बेहद लोकप्रिय रहे हैं। इसी प्रकार, सचिन तेंदुलकर ऑस्ट्रेलियाई क्रिकेट प्रेमियों के बीच अत्यधिक सम्मानित हैं।



'टैल्स फ्रॉम द ईस्ट- इंडिया एंड न्यू साउथ वेल्स' गवर्नर लॉकलेन मक्कारी प्रदर्शनी

सिडनी के उपनगर 'ओल्ड गवर्नमेंट हाऊस' पैरामेटा में अगस्त 2018 में एक प्रदर्शनी लगाई गई जिसमें गवर्नर लॉकलेन मक्कारी के भारत के साथ लगाव और संबंधों पर प्रकाश डाला गया। ऑस्ट्रेलिया के ऐतिहासिक स्थान पैरामेटा में 200 एकड़ पार्कलैंड में स्थित ओल्ड गवर्नमेंट हाउस सबसे पुरानी सार्वजनिक इमारत है। जहाँ लगाई गई अनूठी प्रदर्शनी में 1788 के बाद अंग्रेजों के ऑस्ट्रेलिया में आगमन से सम्बंधित कहानियां दर्शाई गई थीं जिनसे भारत और ऑस्ट्रेलिया के संबंधों का पता तो चला ही, यह भी प्रमाण मिले कि ऑस्ट्रेलिया के इतिहास में भारत ने भी भूमिका निभाई। ओल्ड गवर्नमेंट हाऊस' का हर कमरा ऐसी न जाने कितनी बहुमूल्य वस्तुओं और कहानियों से भरा हुआ है जो भारत और न्यू साउथ वेल्स के उपनिवेश के बीच लंबे और समृद्ध संबंधों की पुष्टि करती हैं।



गवर्नर लॉकलेन मक्कारी भारत में ब्रिटिश सैन्य अभियानों के हिस्से के रूप में 20 साल व्यतीत करने के बाद 1810 में साउथ वेल्स पहुंचे। 1810 से 1821 तक मक्कारी अपनी पत्नी के साथ इस घर में रहे। ओल्ड गवर्नमेंट हाउस ऐतिहासिक स्थानों में से एक है जिसे हेरिटेज संपत्ति का दर्जा दे दिया गया है। गवर्नर लॉकलेन मक्कारी अपने साथ भारत की अनेक

वस्तुएं लेते आए। कहा जाता है कि लार्ड मक्कारी कलकत्ता की खूबसूरती से इतने प्रभावित थे कि जब वे पैरामेटा आए तो इसे एक अच्छे शहर के रूप में विकसित करने का निर्णय लिया।

'पूर्व दिशा से कहानियां- भारत और न्यू साउथ वेल्स' नाम से लगाई गई इस प्रदर्शनी में एंग्लो इंडियन परिधानों, वस्त्रों, फर्नीचर और चाँदी के बर्तनों व जेवरों को दर्शाया गया था।

कुछ रुचिकर बातें

- ऑस्ट्रेलिया में भारत के पहले उच्चायुक्त 1945 में कैनबरा पहुंचे। ऑस्ट्रेलिया के पहले उच्चायुक्त, लेफ्टिनेंट जनरल जनरल इवेन मके को मार्च 1944 में भारत में नियुक्त किया गया।
- हालाँकि वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया राज्य का शहर ऑस्ट्रालिंड भारत और ऑस्ट्रेलिया के नाम पर रखा गया। मैंगलोर शहर ऑस्ट्रेलिया और भारत दोनों में है लखनऊ और डेल्ही जैसे भारतीय नाम की सड़के भी ऑस्ट्रेलिया में हैं।
- सिडनी का बेघर (होमलेस) जूते पोलिश करने वाले ब्रायन नाम के व्यक्ति की अंतिम इच्छा थी कि उसकी मृत्यु के बाद एशेज़ गंगा में समर्पित की जाएं। जनवरी 2017 में उसने आखिरी सांस ली। ब्रायन की यह इच्छा पूरी की ऑस्ट्रेलियाई क्रिकेट के पूर्व कप्तान स्टीव वाँ ने, जो ब्रायन की एशेज़ लेकर भारत गए और उन्हें बनारस में गंगा में प्रवाहित किया।
- दस जून 2018 को ऑस्ट्रेलिया में दो भारतीय सैनिकों को श्रद्धांजलि दी गई जिन्होंने सौ साल पहले अन्य सैनिकों के साथ जर्मन तोपों का सामना करते हुए प्राण गंवाए। इनके नाम प्राइवेट नैन सिंह सैलानी और प्राइवेट सरन सिंह जोहल थे। सैलानी शिमला में पैदा हुए थे जबकि जोहल जलंधर में। दोनों सैनिकों का नाम ऑस्ट्रेलिया के वॉर मेमोरियल की दीवार पर अंकित है।
- 1940 और 50 के दशक में, मैरी एन इवांस जिन्हे फियरलेस नाडिया से जाना जाता है, ने भारत के उभरते हिंदी फिल्म उद्योग के स्टार के रूप में लाखों भारतीयों के दिल पर शासन किया। वह अपनी हंटरवाली फिल्मों के साथ भारतीय सिनेमा का सुपरस्टार बन गईं और आज उन्हें "बॉलीवुड की मूल स्टंट रानी" के रूप में जाना जाता है।



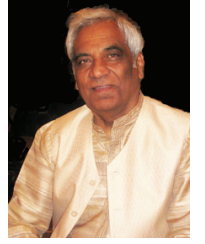
- ऑस्ट्रेलिया में 1940 के दशक और 1950 के दशक के अंत में, भारतीय उच्चायोग में केवल विकास-आधारित वृत्तचित्र का प्रदर्शन किया जाता था। 1960 के दशक के बाद, कुछ भारतीय क्लासिक्स जैसे कि मदर इंडिया (1957) ऑस्ट्रेलियाई सिनेमाघरों में प्रदर्शित हुए थे। जिनके उपशीर्षक ग्रीक भाषा में थे।
- ऑस्ट्रेलिया की प्रसिद्ध गेंदबाज ब्रेट ली ने बॉलीवुड की और एल्बम आशा एण्ड फ्रेंड्स नाम अल्बम में (2006) में गाने गाए।
- पर्थ की एक लेखक जॉयस वेस्ट्रिप ने 'कोलोनियल कज़न' नामक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने लिखा कि कैसे ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा दोनों देश, भारत तथा ऑस्ट्रेलिया, को कॉलोनी की तरह इस्तेमाल किया गया और कैसे भारतियों ने ऑस्ट्रेलिया को बसाने में सहायता की।
- ऑस्ट्रेलियाई बैले नर्तक और मंच प्रबंधक लुईस लाइटफुट ने फिल्म निर्माता के सुब्रमण्यम के साथ काम किया, और ऑस्ट्रेलिया के अग्रणी सिनेमामोग्राफर टॉम क्वान ने दक्षिण भारत में फिल्मों शूटिंग की।
- पुरुषोत्तम बिलिमोरिया की पुस्तक - 'The Indian Diaspora - Hindu and Sikhs in Australia' में लेखक कहते हैं कि १९२१ में एक भारतीय डेलिगेट वि. एस. श्रीनवास सारथि ने इम्पीरियल कांग्रेस लंदन में भारतीय निवासियों के अधिकारों का मुद्दा उठाया जिसके कारण भारत के निवासियों को अपनी ज़मीन, संपत्ति तथा व्यापारी लाइसेंस की अनुमति प्राप्त हुई, जिसके लिए वह लोग काफी वर्षों से संघर्ष कर रहे थे।
- 1980 के दशक में, एक्टर बॉब क्रिस्टो, एक बुरे अंग्रेज के रूप में खलनायक की भूमिका में बहुत सफलता मिली।
- प्रसिद्ध ऑस्ट्रेलियन भारतीय -
 ऐनी वार्नर - ऑस्ट्रेलियाई राज्य राजनेता (भारत में पैदा)
 बॉब क्रिस्टो - भारतीय अभिनेता
 किंग काँग - पेशेवर पहलवान और अभिनेता
 फीयरलेस नाडिया - भारतीय फिल्म अभिनेत्री और स्टंट-महिला
 ग्राहम स्टेनस - ऑस्ट्रेलियाई मिशनरी और चिकित्सक
 ग्रेगरी डेविड रॉबर्ट्स - ऑस्ट्रेलियाई लेखक, बैंक लूटने के लिए दोषी पाया गया
 हरिंदर सिद्धू - 2016 में ऑस्ट्रेलिया का उच्चायुक्त नियुक्त किया गया था
 पीटर वर्गीज़ - 2009-2012 से भारत में ऑस्ट्रेलिया के उच्चायुक्त, जो केरल से थे, बचपन में ही वे ऑस्ट्रेलिया आ गए।
 दोहा छंद का अंतरंग

2

दोहा छंद का अंतरंग

डॉ. रत्नाकर नराले, कनाडा

इस आलेख की सभी काव्य रचनाएँ लेखक की स्वयं रचित हैं.



पार्श्वभूमिका :

अपने मन के विचार भाषा के माध्यम से व्यक्त किये जाते हैं. यह माध्यम दो प्रकार से प्रयुक्त किया जाता है. विचार को यथा है तथा ही उसी क्रम में व्यक्त करना (गद+यत् = कहना) “गद्य” (prose) होता है. उसी मनोभाव को किसी सूत्रबद्ध धुन (tune) या ताल (rhythm) के साथ पादयुक्त स्पष्ट करना “पद्य” (पद्+मन् = मनोभाव से कहना) (poetry) होता है. अतः गद्य पढ़ा (read or speak) जाता है और गद्य किसी धुन में गुनगुनाया (hum) या गाया (sing) जाता है. पद्य के चरण गाते समय विशिष्ट क्रम में जो ताली बजाई जाती है उसे “ताल” अथवा “लय” कहते हैं. अतः पद्य लय बद्ध होता है. पद्य गठन में जो विशेष शब्द रचना की जाती है उसे “वृत्त” अथवा “छंद” (metre) कहाते हैं. फिर भी, जनसाधारण हिंदी की वृत्त एवं छंद दोनों पद्य रचनाओं को छंद ही कहते हैं और संस्कृत की पद्य रचना को लोग श्लोक ही कहते हैं. छंदबद्ध रचना पद्य होती है और बिना छंद की रचना गद्य होती है. जिस रचना में पद्य एवं गद्य दोनों प्रयुक्त हों उसे “चंपु” कहा जाता है.

जिन वर्णों का स्वतंत्र उच्चारण किया जा सकता है उन्हें “स्वर” (vowel) कहते हैं, और जिन वर्णों का उच्चारण किसी भी स्वर को मिलाए बिना स्पष्ट नहीं किया जा सकता है, उसे “व्यंजन” (consonant) कहते हैं. हिंदी पद्य के अक्षर “ह्रस्व” अथवा “लघु” (short) और “दीर्घ” अथवा “गुरु” (long) इन दो तरह के माने गए हैं. पद्य की स्वरलिपि (notation) लिखते समय लघु अक्षर “।” के चिह्न से और दीर्घ अक्षर “ऽ” चिह्न से अंकित किया जाता है. हिंदी के चार लघु स्वर अ, इ, उ और ऋ हैं; और सात दीर्घ स्वर आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ हैं. इनके अलावा अनुस्वार (nesal) व विसर्ग (aspirate) से युक्त वर्णों को दीर्घ माना जाता है. अर्धचन्द्र बिंदु वाले लघु वर्ण लघु ही माने जाते हैं. किसी भी व्यंजन में लघु स्वर मिलाने से वह लघु वर्ण बन जाता है और दीर्घ स्वर मिलाने से वह दीर्घ वर्ण बन जाता है. किसी भी शब्द के संयुक्त वर्ण के पहले आनेवाला लघु वर्ण भी दीर्घ माना जाता है. एक मूल तथा संयुक्त व्यंजन के साथ केवल एक ही स्वर जोड़ा जा सकता है.

गुरु लघु को ग ल भी कहा जाता है. गुरु और लघु छंद शास्त्र के मूल आधार मान कर महामुनि पिंगल का अष्टाध्यायी छंदशास्त्र भारतीय आदितम छंदसूत्र ग्रंथ है. अग्नि पुराण में पिंगल अनुसरित छंदशास्त्र का विमोचन पाया जाता है. वाणीभूषण, लीलावती, वृत्तदर्पण, सूत्रबोध, छन्दोऽर्णव, वृत्तकौमुदी, वृत्तदीपिका, छन्दोमंजिरी, वृत्तरत्नाकर, छंदःप्रभाकर, छन्दःसार जैसे अनेकों छंद-वृत्त अभ्यास ग्रंथ महान छंदकारों ने लिखे हैं. गुरु लघु के संयोग से वर्णों के -- म य र स त न ज भ न, ग ल -- आदि दस मात्रिक तथा -- ट ठ ड ढ ण -- आदि पाँच वर्णिक गण माने गए हैं.

छंदों के लक्षण व सूत्र नियोजित करने के लिए पद्य के प्रत्येक चरण के वर्णों का लघु-गुरु क्रम देख कर चरण के प्रथम अक्षर से आरंभ करके चरणांत तक तीन-तीन अक्षरों का एक-एक समूह बनाया जाता है। इन तीन अक्षरों के प्रत्येक समूह को “गण” कहा जाता है, और उस प्रत्येक समूह की तीन मात्राओं का लघु-गुरु क्रम देख कर उसे आठ विषिष्ट नामों से निर्देशित किया जाता है। मात्रा लघु या गुरु = 2-संभावनाएँ x 3-अक्षरों का प्रत्येक गण = 23 = 8 गणों के विषिष्ट नाम होते हैं। चरण तीन-तीन अक्षरों में बाँट कर अंत में यदि एक या दो मात्राएँ अवशिष्ट हों तो लघु अक्षर का ल गण, और गुरु अक्षर का ग गण माना जाता है।

सबका मूल लघु-गुरु, ह्रस्व-दीर्घ, शून्य-अशून्य अथवा 0-1 का द्वंद्व मान कर, महर्षि पिंगल ने शून्य-एक की अष्टगणना (बायनरी ऑक्टल) रीति सर्वप्रथम प्रस्थापित की, जो कि आज वैज्ञानिक, संगणक एवं तांत्रिक विश्व का मूल आधार बनी है। यह आठ का अंक छन्दशास्त्र में योग, सिद्धि, वसु, दिग्गज, यम तथा अंग संज्ञाओंसे जाना जाता है। इसी सिद्धांत के अनुसार हमने शून्य को प्रथम अंक मान कर :

- (1) 0 = 000 = III = “न” गण
- (2) 1 = 001 = II S = “स” गण
- (3) 2 = 002 = I SI = “ज” गण
- (4) 3 = 011 = I S S = “य” गण
- (5) 4 = 100 = SII = “भ” गण
- (6) 5 = 101 = SI S = “र” गण
- (7) 6 = 110 = S SI = “त” गण
- (8) 7 = 111 = S S S = “म” गण.

इस प्रकार से -- न स ज य भ र त म -- नया तांत्रिक गणक्रम प्रयुक्त किया है। गणक्रम समझने तथा याद करने की यह हमारी सरल एवं तकनीकी युक्ति है। यह -- न स ज य भ र त म -- वाला नया गणक्रम -- म य र स त न ज भ न -- वाले पुराने गणक्रम से बढ़कर और तकनीकी है।

तीन वर्ण का गण बने, लघु गुरु कल का ठाठ ।
पिंगलमुनि ने गण कहे, न स ज य भ र त म आठ ॥

यथा सर्व ब्रह्माण्ड है, पंच भूत से व्याप्त ।
छंदशास्त्र भी है तथा, दश अक्षर से व्याप्त ॥

कल-गति-यति प्रतिपाद में, और चरण का अंत ।
नियुक्त हों जिस पद्य में, वह कहलाता है छन्द ॥

छन्द बद्ध वह पद्य है, बिना छंद है गद्य ।
गद्य-पद्य मिल कर रचा, चंपू है वह हृद्य ॥

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में समान वर्णाक्षर आते हैं उसे “अक्षरवृत्त” अथवा केवल वृत्त कहा जाता है। जिस पद्य के प्रत्येक चरण में समान वर्णाक्षर की संख्या (number) और उन अक्षरों का लघु/गुरु क्रम भी समान होता है उसे “अक्षरगणवृत्त” कहा जाता है। जिस पद्य के प्रत्येक चरण में वर्णाक्षर की संख्या और लघु/गुरु क्रम (position) भी समान हो या न हो, मगर प्रत्येक चरण में मात्राओं की संख्या समान होती है, उसे “मात्रावृत्त” अथवा “जाति” कहा जाता है।

भारतीय काव्य (poetry) अधिकतर चार चरणों के पद्य अथवा चरण संचयों (stanzas) में लिखा जाता है, जिनका प्रत्येक चरण या पंक्ति (foot, line, verse) सुनिश्चित वर्णों/अक्षरों (syllables) अथवा वर्णोच्चारों/मात्राओं (syllabic instants) से विनियमित होते हैं। किसी भी अक्षर वा संयुक्ताक्षर को कहने में जो अवधि व्यतीत होता है उस अवधि (अथवा कालावधि के संकेत चिह्न) को “मात्रा” कहते हैं। मात्रा के पर्यायवाची शब्द हैं “कल, कला, मत्त, मत्ता।”

पारिभाषिक शब्दावलि में : 1. ल = एक लघु । ; 2. ग = एक गुरु ऽ; 3. लल = दो लघु ॥, 4. गग = दो गुरु ऽऽ; 5. लग = लघु गुरु ।ऽ; 6. गल = गुरु लघु ऽ।; 7. यति = विराम; 8. कल = कला, मत्त, मत्ता, मात्रा; 9. “द्विकल” = दो मात्रा वाला शब्द ॥, ऽ; 10. “त्रिकल” = तीन मात्रा वाला शब्द ॥॥, ।ऽ, ऽ।; 11. “चौकल” = चार मात्रा वाला शब्द ॥॥॥, ॥ऽ, ।ऽ।, ऽ।।, ऽऽ; 12. “दग्धाक्षर” = कविता आरंभ करने योग्य शुभ अक्षर क, ख, ग, घ, च, छ, ज, ड. 13. “दंडक” = 32 से अधिक मात्रा वाला मात्रिक छंद; 14. मात्रिक “ट” गण = 6 मात्रा वाले छंद (ऽऽऽऽ, ॥ऽऽ, ।ऽ।ऽ, ऽ।।ऽ, ॥॥।ऽ, ।ऽ।।, ऽऽ।।, ॥ऽ।।, ।ऽ।।।, ऽ।।।।, ॥।।।।); 15. मात्रिक “ठ” गण = 5 मात्रा वाले छंद (।ऽऽ, ।ऽ।, ॥।ऽ, ऽऽ।, ॥ऽ।, ।ऽ।।, ऽ।।।, ॥।।।); 16. मात्रिक “ड” गण = 4 मात्रा वाले छंद (ऽऽ, ॥ऽ, ।ऽ।, ऽ।।, ॥।।); 17. मात्रिक “ढ” गण = 3 मात्रा वाले छंद (।ऽ, ऽ।, ॥।); 18. मात्रिक “ण” गण = 2 मात्रा वाले छंद (॥, ऽ); 19. एक मात्रा (।, ऽ) का गण या छंद नहीं होता है।

भारतीय विद्याओं की नींव है वेद। वेदों के छह अंगों में प्रथम अंग है छंद, जो कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा, व्याकरणादि अन्य पाँच वेदांगों के निरूपण का एक माध्यम होते हैं।

पादौ छन्दस्तु वेदस्य करौ कल्पो नु गद्यते ।
आननं ज्योतिषं चक्षुः कर्णौ निरुक्तमुच्यते ॥

प्राणं शिक्षा स्मृतं विज्ञैः तथा व्याकरणं मुखम् ।
छन्दविज्ञानरस्तस्मादिन्द्रलोकमधिगच्छति ॥

जिस पद्य के चारों (सभी) चरण एकसे हों मगर वर्ण क्रम एक समान न हो वह “मात्रिक छंद” है और जिस पद्य के चारों (सभी) चरणों में वर्ण क्रम और वर्ण संख्या एक समान हो वह “वार्णिक वृत्त” होता है। (1.) जिस वृत्त के चरण संचय (stanza) के सम चरण तथा विषम चरण दोनों एक जैसे (similar) होते हैं उसे “समवृत्त” कहते हैं, उदा. चौपाई; (2.)

जिस वृत्त के सम चरण एक जैसे और विषम चरण एक जैसे होते हैं उसे “अर्धसमवृत्त” कहते हैं, उदा. दोहा, श्लोक; और (3.) जिस वृत्त के सभी (चारों) चरण एक जैसे नहीं (dissimilar) होते हैं उसे “विषमवृत्त” कहते हैं, उदा. कुंडलिया.

सूत्र युक्त कृत पद्य को, कवि कहते हैं “छन्द” ।

अलंकार रस वर्ण का, मन को दे आनंद ॥

सुंदर लघु गुरु वर्ण का, चार चरण न समान ।

मात्रा संख्या सम जहाँ, “मात्रिक छन्द” प्रमाण ॥

लघु गुरु अक्षर क्रम जहाँ, चारों चरण समान ।

संख्या भी सम वर्ण की, “वर्णवृत्त” है नाम ॥

लक्षण, संख्या सम जहाँ, रहे चरण में चार ।

कहा उसे “सम वृत्त” है, करके छंद विचार ॥

प्रथम तीसरा सम जहाँ, दो अरु चार समान ।

उसे “अर्ध सम” है कहा, दोहा छंद प्रमाण ॥

चारों पद जिस पद्य के, लक्षण में असमान ।

“विषम वृत्त” उसको कहें, जिन्हें छंद का ज्ञान ॥

दीर्घ काव्य कभी भी केवल एक ही छंद प्रकार में नहीं लिखा जाता, अन्यथा पाठक को वह उकतावना लगता है.

मगर, उपरोक्त तीन छंद वर्गों में केवल हिंदी का दोहा छंद और संस्कृत का श्लोक छंद ही ऐसे दो विशेष छंद हैं जिनकी दीर्घतम रचना भी उकतावनी नहीं लगती बल्कि अधिकाधिक मनोरंजक होती जाती है. इस आलेख में हम दोहा छंद का गहन अंतरंग देखेंगे, और फिर कभी अन्य आलेख में श्लोक आदि छंदों के मनमोहक अंतरंग भी देखेंगे.

दोहा छन्द :

दोहा शब्द संस्कृत दुह धातु से बना है, दोग्धि चिन्तामिति दोहा: । यह एक 24 मात्रा का मात्रिक छन्द है । श्लोक छंद के समान इसमें भी चार चरण होते हैं और यह भी अर्धसम छन्द है ।

दोहा छंद के अंतरंग की विशेष बातें यह हैं कि, दोहे में :

- (1) विषम चरणों की 13 कल, मत्त अथवा मात्राएँ होती हैं। अंतिम वर्ण दीर्घ होता है।
- (2) सम चरणों की 11 तराएँ होती हैं। अंतिम वर्ण लघु होता है।
- (3) विषम चरणों के अंत में ज गण (I SI) नहीं आना चाहिये।
- (4) सम चरण के अंत में ज गण (I SI) और विषम चरण के अंत में र गण (SI S) उत्तम होता है।
- (5) अन्य वर्णों के लिए मात्रिक बन्धन नहीं होता है। इस मात्रिक स्वातंत्र्य के कारण दोहों में विविध चालें प्राप्त होती हैं। दोहों में लिखी कविताओं के पदों में इस गण-विविधता के कारण इस छन्द की विस्तृततम रचना भी उकतावनी नहीं होती है।
- (6) किसी भी केवल एक ही मात्राक्रम में कविता के सभी दोहे नहीं लिखने चाहिये।

दोहा छन्द

8 + SI S + 7 + I SI

भक्ति काव्य का छन्द ये, मीठा बहुत सुहाय।

तेरह-ग्यारह मत्त का, 'दोहा' इति कहलाय ॥

सा-सा सा-सा सा- रे-ग म-, प-प- धपम गम-म।

सा-सासा रे-रेरे ग-पम-, प-प धप मगम-म ॥

अच्छे दोहे लिखते समय यह ध्यान में रहे कि दोहे के 13 मात्रा वाले विषम चरण के आदि में ज गण (ISI) नियोजित नहीं हो। विषम चरण की 13 मात्रा के अंत में स गण (IIS) अथवा र गण (SIS) अथवा न गण (IIN) रखना उचित होता है। तथा ही, 11 मात्रा वाले सम चरण में ज गण (ISI) अथवा त गण (SSI) उचित होता है।

जिस दोहे के आदि में विषम कल (IS), (SI) अथवा (III) हो उसे "विषम कलात्मक" दोहा जानिए। इसका सूत्र 3 + 3 + 2 + 3 + 2 इस प्रकार से होगा। इस सूत्र में जो त्रिकल के बाद त्रिकल द्विकल और फिर अंत में त्रिकल के बाद द्विकल आता है उस समूह के अंतिम त्रिकल में (IS) यह क्रम न आवे, नहीं तो विषम चरणका अंत दो गुरु से होगा, जो अनुचित है।

जिस दोहे के आरंभ में सम कल (IIS), (SS) अथवा (IIII) आए उसे "सम कलात्मक" दोहा जानिए। इसका सूत्र 4 + 4 + 3 + 2 होता है। यहाँ, चौकल के बाद चौकल और फिर त्रिकल और द्विकल का समूह होना चाहिए। अंतिम त्रिकल (IS) का न हो, नहीं तो अंत में ज गण (ISI) के स्थान में य गण (ISS) होगा, जो उचित नहीं है।

दोहे के 11 मात्रा वाले सम चरणों की रचना 4 + 4 + 3 अथवा 3 + 3 + 2 + 3 इस प्रकार होती है। अंतिम त्रिकल की रचना (SI) इस रीति से हो। ज गण (ISI) अंतिम हो तो अच्छा।

दोहे के विषम चरणों के आदि में ऐसे तीन वर्ण के शब्द न प्रयोग करें जहाँ इन तीन वर्णों का ज गण (।।।) बन जाता हो. यदि ऐसे शब्द का प्रयोग किया हो तो वह शब्द किसी देव-देवता का नाम हो, नहीं तो वह “चंडालिनी” दोहा होगा. ऐसा अनुचित प्रयोग त्याज्य हो. ऐसे दोहे में लय की न्यूनता का दोष होता है. परंतु, प्रथम व द्वितीय अक्षर से अथवा द्वितीय और तृतीय अक्षर से शब्द बन जाता हो, तो वह दोहा चंडालिनी नहीं होगा.

चंडालिनी दोहा छंद

4 + 4 + 5।5, 7 + ।।।

(दोषयुक्त चंडालिनी)

महान उनकी प्रीत जो, दे देते निज प्राण ।

(दोषमुक्त दोहा)

महा न उनकी प्रीत जो, दे देते निज प्राण ।

मुकुंद उनकी प्रीत जो, दे देते निज प्राण ॥

दोहे के विषम चरणों में दो मात्राएँ अधिक हो अर्थात् 15 मात्राएँ हों तो वह दोही छंद होगा. इसमें कुल 52 मात्राएँ होंगी. और इसका सूत्र 10 + 5।5, 7 + ।।। इस तरह से होगा.

पन्द्रह कल हों विषम में, गुरु लघु गुरु से अंत ।

सम में ग्यारह, ल ग ल अंत, जानो “दोही” छंद ॥

दोही छन्द

10 + 5।5, 7 + ।।।

(श्रीराम जन्म)

कौशल्या माँ की गोद में, जन्म लिए सुत राम ।

वदन सुमंगल अभिराम था, कमल पुष्प सत् नाम ॥ 1

दशरथ नृप अत्यानंद से, हर्षित पुलकित गात ।

प्रसन्न अवध नगर मोद से, तीनों हुलसित मात ॥ 2

दोहा छंद के दृष्टांत के लिए हमारे लिखे हुए कुछ सुंदर उदाहरण देखिए. आपकी रुचि के लिए हमने यहाँ हारमोनियम की संगीत स्वरलीपी भी लिख कर प्रस्तुत की है.

भगवद् गीता 11वाँ अध्याय
(विराट रूप)
स्थायी

दिव्य रूप प्रभु! आपका, विस्मय पूर्ण अपार ।
दै के दरसन कीजिए, जीवन सफल हमार ॥
रे-ग म-म मम प-मप-, नि-धप ध-नि धप-प ।
नि- ध- पपमम प-मग-, रे-रेरे गगम पम-म ॥

अंतरा-1

गल में माला दिव्य हैं, कंचन मोती हार ।
रवि शशि कुंडल कान में, सिर पर मुकुट तिहार ॥
रेरे ग- म-म- प-म प-, नि-धप ध-निध प-प ।
निनि धध प-मम प-म ग-, रेरे रेरे गगम पम-म ॥

अंतरा-2

नाना कर पद नेत्र हैं, मुख में दाँत विशाल ।
गदा चक्र धनु हाथ में, ंख पद्म तलवार ॥

अंतरा-3

अंग वस्त्र जरी तार के, जिनमें रंग हजार ।
कटि पीतांबर से सजा, सोहे रूप निखार ॥

अंतरा-4

प्रभा आपकी की प्रखर है, सूर्य सहस्र समान ।
दिव्य देव के देह में, त्रिभुवन का दीदार ॥

अंतरा-5

आदि न मध्य न अंत है, अद्भुत सुर करतार ।
हरि को लाख प्रणाम हैं, नत सिर बारंबार ॥

अंतरा-6

ऋषि-मुनि सुर सब नेह में, विस्मित दृश्य निहार ।

ब्रह्म विष्णु शिव काय में, रूप विराट तिहार ॥

गीता अध्याय 12

(भक्तियोग)

स्थायी

भगत सदा संतुष्ट वो, जिसका निश्चय ढीठ ।

तन मन से मुझमें लगा, वो है मेरा मीत ॥

रेरेरे रेग- म-प-म प-, धधध- प-मग म-म ।

रेरे गग म- पपध- पध-, प- म- प-मग रे-रे ॥

अंतरा-1

किसी को न जिससे व्यथा, न जो किसी से व्यथित ।

हर्ष दुखों से जो परे, उससे मुझको प्रीत ॥

रेरे- ग- ग ममप- मप-, ध ध- पम- ग मग-ग ।

रे-रे गम- प- ध- पध-, पपम- पपमग रे-रे ॥

अंतरा-2

जिसे न धन की चाह है, और स्पृहा न तनिक ।

शुद्ध उदासी भक्त वो, करता मुझसे प्रीत ॥

अंतरा-3

जो न सुखों का लालची, राग-क्रोध अतीत ।

सम सुख-दुख में भक्त जो, उसकी सच्ची प्रीत ॥

अंतरा-4

शत्रु मित्र कोई कहे, अपमान किया अगणीत ।

रंज नहीं कोई जिसे, न्यारी उसकी रीत ॥

अंतरा-5

जो न किसी का शत्रु है, सबको कहता मीत ।

जो उसको बैरी कहे, उससे भी है प्रीत ॥

अंतरा-6

दुख देते जो काम हैं, उनसे रहे अतीत ।

लाभ-हानि सब एक हों, सदा उसी की जीत ॥

अंतरा-7

हर दम जपता नाम जो, गाता मेरे गीत ।
गान भजन मेरे जिसे, कर्ण मधुर संगीत ॥

अंतरा-8

अमृत मय इस धर्म की, जिसके मन में आस ।
श्रद्धा वाला भक्त वो, मेरा है प्रिय खास ॥

दोहा छंद का पूरक (complementary) छंद है 16 मात्रा की चार चरणों वाला "चौपाई" छंद जिसमें प्रत्येक चरण का अंत गुरु मात्रा से होता है. अंत में ज गण (ISI) और त गण (SSI) वर्ज्य होते हैं. चौपाई छंद का अंतरंग अगले अंक में प्रस्तुत होगा, मगर अभी के लिए छंदशास्त्र की दृष्टि से, चौपाई छंद की विशेष बात यह कि, इसकी 64 मात्राएँ 16 चौकल में विभाजित न हों, अन्यथा वह पादाकुलक छंद होजाता है.

मात्रा सोलह की कला, ना हो ज या त अंत ।
सभी न चौकल न हों जहाँ, वह चौपाई छंद ॥

दोहा-चौपाई कहे, पूरक हिंदी छंद ।
गिर्वाणी की देन हैं, देते मन आनंद ॥

दोहा छंद में स्थायी और चौपाई छंद में अंतरे सजा कर हमने रचे हुए रामायण के चंद गीतों के सुंदर नमूने देखिए :

रामायण, अरण्य काण्ड
(वनवास गमन)
दोहा

राम-सिया वन को चले, लखन लला है साथ ।
मातु-पिता गृह को तजे, धन्य-धन्य रघुनाथ ॥

नि-नि निनि- निनि सां- -निसां- - -, निनिनि निनि- रेंसां सां- - सां ।

नि -नि निनिप पप पग- परे- - -, ग-ग परेरेरे रेसा- -सा ॥

स्थायी

चंदन तिलक सुमंगल माथे, चंदन तिलक सुमंगल माथे ।
दशरथ नंदन राम सुहाते ।

श्री राम जय राम-, जय जय रामा, जय राम-सिया राम-, जय जय रामा ॥

जय राम-सिया राम, जय राम सियाराम-, जय जय रामा ॥

-ग-गप रेरेसा सान्निप्रेरे गरेसारे, -ग-गप रेरेसा सा-न्निप्रे रेरे गरे -सा- ।
-पग पप निसारेंसांनिप पगग परे -सा- ।
-गग गप रेरे सासा-, न्निप्रे रेरे गरे-सा-ग, गग गप रेरेसासा-, न्निप्रे रेरे गरे-सा- ॥

अंतरा-1

शीश जटा कटि वल्कल धारे, कानन कुंडल नयन लुभाते ।

जय राम-सिया राम, सियाराम जय जय रामा ॥

-पगप पसां- सांसां- न्निनिरे ध-प-, -गगगप रे-सासा -न्निप्रे रेगरे-सा- ।
-गग गप रेरे सासा- न्निप्रे रेरे गरे-सा-, गग गप रेरे सासा- न्निप्रे रेरे गरे-सा- ॥

अंतरा-2

मुख मंडल पर हास्य बिराजे, विघ्न कष्ट कछु नाहि दुखाते ।

अंतरा-3

वीर धनुर्धर धीरज धारी, संकट मोचन राम कहाते ।

अंतरा-4

राम रमैया भव की नैया, राम-नाम नर को हरसाते ।

अंतरा-5

राम सहारे, राम किनारे, राम-नाम सब दुख बिसराते ।

अंतरा-6

भीषण पाप मनुष के जेते, राम-नाम से सब छुट जाते ।

अंतरा-7

राम-सिया संग लछमन सोहे, लखन लला सब जन को भाते ।

अंतरा-8

राज काज सुख तज कर सारे, मातु-तात के बचन निभाते ।

अंतरा-9

सिया संग प्रभु वन में बिराजे, भगतन राम चरित शुभ गाते ।

अंतरा-10

वाह वाह रे दशरथ राजा! धन्य-धन्य कौशल्या माते! ।

दोहा

दीन-दयाला आप हैं, करुण कृपालु राम! ।

कौशल्या सुत, हे सखे! पाहि पाहि रे माम् ॥

नि-नि निनि-नि- सां- -नि सां- - -, न्निनि निनि-रेंसां सां- -सां ।

नि-नि-निप पप, ग- परे- - ! ग-ग परेरे रेसा सा- -सा ॥

रामायण, लंका काण्ड

(अयोध्या गमन)

दोहा

राघव लंका से चले, वापस अपने देस ।

देत विदाई रोइके, विभीषण जी लंकेस ॥

राम सिया राम, सिया राम, जै जै रामा ॥ टेक

सा-सासा रे-रे- ग- रेग-, म-मम पमगरे ग-ग ।

म-म मम-म- प-मप-, धधधप म- रे-सा-सा ॥

सा- रेग म-, पम ग-ग, रे- ग- रेसासा- ॥

चौपाई

1. सिया संग श्री राम सुहाते, देख युगल मम नैन लुभाते ।

राम-सिया राम, सिया राम, जै जै रामा ॥

सा-रे- ग-ग ग- प-म गरे-ग-, प-म गरेरे गग प-म गरे-सा- ।

सा- रेग म-, पम ग-ग, रे- ग- रेसासा- ॥

2. शुभ्र वस्त्र में रघुवर साजे, पीत वसन सिय तन पे बिराजे ।

3. पुष्प पर्ण आभूषण धारी, शुद्ध सादगी लगती प्यारी ।

4. जटा खड़ाऊँ पिनाक धारी, रामचंद्र की मूरत न्यारी ।

5. राम-सिया शुभ्र मंगलकरी, प्रभु चरणन में सब बलिहारी ।

6. राम लखन सीता हनुमंता, दर्शन पावन सुखद अनंता ।

7. सुर-असुर सब अमृत भीने, विभीषण को लंका पति कीन्हे ।

8. भरत मिलन की मन में आसा, राम-लखन-सिय हनुमत दासा ।

राम-सिया राम, सिया राम, जै जै रामा ॥

दोहा

भरत-मिलन की आस है, चाँद चकोर समान ।

सीता को लेकर चले, राम लखन हनुमान ॥

गगग गगग म- प-म प-, ध-प मप-म गरे-रे ।

सा-सा सा- रे-गम गरे-, म-म गगग रेरेसा-सा ॥

दोहे केवल हिंदी, हिंदुस्थानी या उर्दू में ही नहीं लिखे जाते हैं, हमने संस्कृत एवं मराठी भाषा में भी सुंदर दोहे लिखे हैं, उनके कुछ उत्तम नमूने देखिए :

संस्कृत दोहा
(श्रीराम तिलक)

हे राम! त्वं जनप्रियः, त्वं हीरकश्च हेम ।
भवताद्युवराजो भवान्, वयं हृष्टा भवेम ॥ 1

रघुवर श्रीधर भोः प्रभो! रघुवीरस्तव नाम ।
धनुर्धर रामचन्द्र त्वं, युवराजो भव राम ॥ 2

मराठी दोहा

॥ रत्नाकरी श्रीहनुमान चालीसा ॥

(मूल तुलसीदासी हनुमान चालीसा का यथा तथा मराठी रूपांतर)

श्रीगुरु चरण-कमळ धूळ, करि मन-दर्पण नितळ ।
कथन रघुवर सुयश विमळ, चतुर्विध देते फळ ॥ 1
सा-सासा सासासारेरेरे ग-रे, गग गग ग-गग पमग ।
रेरेरे गगगग ममम पमग, धप-मम ग-म- गरे- ॥

बुद्धिहीन तनु जाणुनी, स्मरतो पवनकुमार ।
बुद्धि विद्या सबळ करुनी, हर मम क्लेश विकार ॥ 2
सा-सारे-रे रेरे ग-मग-, धपम- गगगपम-म ।
ग-ग म-म- पपप मगरे-, सासा रेरे म-ग रेसा-सा ॥

वायुसुत भयहर! कर हित, शुभकाया सुखरूप! ।
राम लखन सीता सहित, वस मम हृदि सुरभूप! ॥ 3
प-पपप धनिधप! मम गरे, गगम-म- पमग-ग ।
रे-रे रेरेरे ग-ग- ममम, धध पप मम गरेसा-सा ॥

दोहा छंद के 23 प्रकार

(दोहा = 48 = 13, 11 + 13, 11 मात्रा)

दोहे की $(13+11) \times 2 = 48$ मात्राओं के लघु-गुरु लक्षण पर निर्धारित दोहा छंद के 23 प्रकार हो सकते हैं, जिनकी 48 मात्रा की चार चरणों में चार मात्राएँ लघु होना अनिवार्य है. अतः शून्य से अत्यधिक 22 तक मात्राएँ ही गुरु हो सकती हैं, और परिणामतः 23 प्रकार के दोहे संभव हैं. इन 23 विविध प्रकारों का अब सोदाहरण विवरण देखिए :

1. भ्रमर दोहा छन्द

22 गुरु + 4 लघु

$(SSSSS + 1S, SSSSS + 1) \times 2$

जिस दोहे में 22 गुरु अक्षर और चार लघु अक्षर आते हैं वह भ्रमर दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में मात्र एक ही लघु मात्रा आती है, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है, अन्य सभी मात्राएँ गुरु होती हैं. इसका सूत्र 22 ग + 4 ल इस प्रकार होगा.

(दोहा और चौपाई)

दोहा-चौपाई कहे, ऊँचे हिंदी छंद ।

गिर्वाणी की देन हैं, देती जो आनंद ॥

2. सुभ्रमर दोहा छन्द

21 गुरु + 6 लघु

4 गुरु + 5। 5, 5 गुरु + 1

(राधा गोपी)

कान्हा तोरा लाइला, मोरा नैनुँ खात ।

बोली गोपी राधिका, सुनो, याशोदा मात! ॥

3. शरभ दोहा छन्द

20 गुरु + 8 लघु

जिस दोहे में 20 गुरु अक्षर और 8 लघु अक्षर आते हैं वह भ्रमर दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी चार लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 20 ग + 8 ल इस प्रकार होगा.

(माखन चोर)

माखन चोरी है, सखी! बोलो किसका काम ।

गोपी बोली, "मैं कहूँ, कान्हा का ही नाम" ॥

4. श्येन दोहा छन्द

19 गुरु + 10 लघु

जिस दोहे में 19 गुरु अक्षर और 10 लघु अक्षर आते हैं वह श्येन दोहा होता है। इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है। चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 6 लघु मात्राएँ होती हैं। इसका सूत्र 19 ग + 10 ल इस प्रकार होगा।

(कान्हा)

गोपी! गोपी! मैं नहीं, खायो माखन तोर ।
फिर भी कह दे नाम क्यों, लेती है तू मोर ॥

(हिंदी के छंद)

दोहा रोला कुंडली, चौपाई के संग ।
कवित्त सोरठ छंद से, हिन्दी पद में रंग ॥

5. मण्डुक दोहा छन्द

18 गुरु + 12 लघु

जिस दोहे में 18 गुरु अक्षर और 12 लघु अक्षर आते हैं वह श्येन दोहा होता है। इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है। चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 12 लघु मात्राएँ और होती हैं। इसका सूत्र 18 ग + 12 ल इस प्रकार होगा।

(आत्मा, गीता अध्याय 2)

अक्षर ये आतमा है, अक्षय उसी को जान ।
आत्मा ही ये ब्रह्म है, देही की पहिचान ॥

(विश्ववृक्ष, गीता अध्याय 10)

विश्ववृक्ष अश्वत्थ तू, अद्भुत दैवी रूप ।
विश्वरूप श्रीकृष्ण जी! पूजूँ मैं, सुरभूप! ॥

6. मर्कट दोहा छन्द

17 गुरु + 14 लघु

जिस दोहे में 17 गुरु अक्षर और 14 लघु अक्षर आते हैं वह मर्कट दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 10 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 17 ग + 14 ल इस प्रकार होगा.

(हिंदी भाषा)

हिन्दी हमरी मातु है, हमको देती ज्ञान ।
देकर दैवी संस्कृति, दूर करे अज्ञान ॥

(तुलसी दास)

संस्कृत भाषा के यथा, महाकवि हैं व्यास ।
हिन्दी के सर्वोच्च हैं, कविवर तुलसी दास ॥

(कर्मयोग, श्रीकृष्ण उवाच)

करो कर्म निष्कामना, फल की आशा छोड़ ।
यही योग है कर्म का, मुझमें मन को जोड़ ॥

7. करभ दोहा छन्द

16 गुरु + 16 लघु

जिस दोहे में 16 गुरु - 16 लघु अक्षर आते हैं वह करभ दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 12 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 16 ग + 16 ल इस प्रकार होगा.

(सरस्वती देवी)

विद्या राणी शारदा! तेरा जय जयकार ।
मम जीवन पर सर्वथा, तेरा ही अधिकार ॥

8. नर दोहा छन्द

15 गुरु + 18 लघु

जिस दोहे में 17 गुरु अक्षर और 14 लघु अक्षर आते हैं वह नर दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 14 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 15 ग + 18 ल इस प्रकार होगा.

(हिंदी भाषा)

हिन्दी भाषा सुगम है, कहते संत सुजान ।

चारु मनोरम सुखद है, जिन्हें काव्य का ज्ञान ॥

(कालिया मर्दन)

कालिया के शीश पर, नाचत नंद कुमार ।
ब्रज जन सारे देखते, लीला बहुत अपार ॥

9. हंस दोहा छन्द

14 गुरु + 20 लघु

जिस दोहे में 14 गुरु अक्षर और 20 लघु अक्षर आते हैं वह हंस दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 16 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 14 ग + 20 ल इस प्रकार होगा.

(वंदना)

गिरि सरिता सागर मही, नमामि तन मन जोड़ ।
सूर्य चंद्र तारे सभी, बिना किसी को छोड़ ॥

(कंस निकंदन)

अष्टम बालक मार कर, कंस भयो निश्चित ।
कहे, अमर मैं हो गया, हो न सके मम अंत ॥

10. मदुकल दोहा छन्द

13 गुरु + 22 लघु

जिस दोहे में 13 गुरु अक्षर और 22 लघु अक्षर आते हैं वह मदुकल दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 18 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 13 ग + 22 ल इस प्रकार होगा.

(प्रणिपात)

देव-देवता सर्व ही, गुरुजन जितने ज्ञात ।
मात-पिता मम पूज्य के, चरणन में प्रणिपात ॥

(हिंदी भाषा)

सुरस सुलभ सुखकार है, जग में भाषा एक ।

हिन्दी वह शुभ नाम है, जानत हैं जन नेक ॥

11. पयोधर दोहा छन्द

12 गुरु + 24 लघु

जिस दोहे में 12 गुरु अक्षर और 24 लघु अक्षर आते हैं वह पयोधर दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 20 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 12 ग + 24 ल इस प्रकार होगा.

(नमन)

नमो नमः प्रभु इंद्र को, वरुण देव! सम्मान ।

धन्य कियो पितु मातु को, राम भक्त हनुमान ॥

12. चल दोहा छन्द

11 गुरु + 26 लघु

जिस दोहे में 11 गुरु अक्षर और 26 लघु अक्षर आते हैं वह चल दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 22 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 11 ग + 26 ल इस प्रकार होगा.

(गोविंद)

सब नयनन गोविंद है, सपनन में गोविंद ।

दरशन में गोविंद है, सिमरण में गोविंद ॥

13. वानर दोहा छन्द

10 गुरु + 28 लघु

जिस दोहे में 10 गुरु अक्षर और 28 लघु अक्षर आते हैं वह वानर दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 24 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 10 ग + 28 ल इस प्रकार होगा.

(वनवास गमन)

कह कर पितुवर को विदा, निकले श्री रघुनाथ ।

लखन सिया भी चल पड़े, गुरुवर उनके साथ ॥

सब मिल कर हम साथ में, दुख को करें तमाम ।

करें विपद् का सामना, यही उचित अब काम ॥

14. त्रिकाल दोहा छन्द

9 गुरु + 30 लघु

जिस दोहे में 9 गुरु अक्षर और 30 लघु अक्षर आते हैं वह त्रिकाल दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 26 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 9 ग + 30 ल इस प्रकार होगा.

(राम, लक्ष्मण, सीता)

चारु चरित आदर्श हैं, पावन विमल कुलीन ।

अनघ अमल प्रियदर्श के, राम-लखन-सिय तीन ॥

15. कच्छप दोहा छन्द

8 गुरु + 32 लघु

जिस दोहे में 8 गुरु अक्षर और 32 लघु अक्षर आते हैं वह कच्छप दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 28 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 8 ग + 32 ल इस प्रकार होगा.

(सत, रज, तम गुण)

रज-तम गुण के ह्रास में, सत् का चढत प्रभाव ।

सत्-रज नश कर तमस् है, सत्-तम से रज-भाव ॥

(वनवास प्रयाण)

पिता चरण रज भाल पर, लगाय कर सुत राम ।

विपिन गमन को चल पड़े, सहित सिया सुखधाम ॥

16. मच्छ दोहा छन्द

7 गुरु + 34 लघु

जिस दोहे में 7 गुरु अक्षर और 34 लघु अक्षर आते हैं वह मच्छ दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 30 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 7 ग + 34 ल इस प्रकार होगा.

(शबरी)

शबरी चख-चख राम को, मधुर-मधुर फल देत ।

प्रमुदित रघुपति खात हैं, सुख मन परम समेत ॥

17. शार्दूल दोहा छन्द

6 गुरु + 36 लघु

जिस दोहे में 6 गुरु अक्षर और 36 लघु अक्षर आते हैं वह शार्दूल दोहा होता है। इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है। चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 32 लघु मात्राएँ और होती हैं। इसका सूत्र 6 ग + 36 ल इस प्रकार होगा।

(सीता अपहरण)

रघुपति रघुवर की सिया, करत कुटिर मँह वास ।

निश-दिन तरसत लंक में, पति बिन बहुत उदास ॥

18. अहिधर दोहा छन्द

5 गुरु + 38 लघु

जिस दोहे में 5 गुरु अक्षर और 38 लघु अक्षर आते हैं वह अहिधर दोहा होता है। इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है। चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 34 लघु मात्राएँ और होती हैं। इसका सूत्र 5 ग + 38 ल इस प्रकार होगा।

(लखन लला)

लखन कहत प्रभु राम को, रख कर पग पर शीश ।

जनम-जनम तुम मम रहो, प्रिय अगरज, जगदीश! ॥

(सीताराम राधेश्याम)

प्रीत शब्द के दो हि हैं, जग में सुंदर नाम ।

पहला सीताराम है, दूजा राधेश्याम ॥

19. व्याल दोहा छन्द

4 गुरु + 40 लघु

जिस दोहे में 4 गुरु अक्षर और 40 लघु अक्षर आते हैं वह व्याल दोहा होता है। इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है। चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 36 लघु मात्राएँ और होती हैं। इसका सूत्र 4 ग + 40 ल इस प्रकार होगा।

(वरुण, पवन)

वरुण करत हम पर दया, सरसर बरसत नीर ।

पवन तनय यह तव कृपा, सनसन वहत समीर ॥

20. बिडाल दोहा छन्द

3 गुरु + 42 लघु

जिस दोहे में 3 गुरु अक्षर और 42 लघु अक्षर आते हैं वह बिडाल दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 38 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 3 ग + 42 ल इस प्रकार होगा.

(गणेश)

जगत नमन करत तुमको, गणपति! तुम गणनाथ ।
चरण पडत सब भगत जन, गजमुख! हिरदय साथ ॥

21. श्वान दोहा छन्द

2 गुरु + 44 लघु

जिस दोहे में 2 गुरु अक्षर और 44 लघु अक्षर आते हैं वह श्वान दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 40 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 2 ग + 44 ल इस प्रकार होगा.

(शिवजी)

नमन शिव पशुपति नटवर! सुरवर त्रिदश शंकर! ।
त्रिनयन शशिधर डमरुधर! वृषपति अनघ शेखर! ॥

22. उदर दोहा छन्द

1 गुरु + 46 लघु

जिस दोहे में 2 गुरु अक्षर और 46 लघु अक्षर आते हैं वह उदर दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में कम से कम एक लघु मात्रा होनी चाहिए, जो कि दोहे के लिए न्यूनतम आवश्यकता होती है. चार चरणों में अन्यत्र कहीं भी 42 लघु मात्राएँ और होती हैं. इसका सूत्र 1 ग + 46 ल इस प्रकार होगा.

(हनुमान)

कमल सुमन, कपि! तव चरण, हरि-अनुचर तुम परम ।
पवनसुत! तव शुभ दरशन, कपिवर! तुमको नमन ॥

23. सर्प दोहा छन्द

0 गुरु + 48 लघु

जिस दोहे में शून्य गुरु अक्षर और सभी 48 लघु अक्षर आते हैं वह उदर दोहा होता है. इसके प्रत्येक पाद में सभी होती है. इसका सूत्र 0 ग + 48 ल इस प्रकार होगा.

(श्रीराम)

दशरथ तनय कमलनयन! पारम तव विपिन गमन ।

रघुपति! मम शत शत नमन, अवधपति! जय जय ॥

दोहा छंद का साथी (companion) छंद है चौपाई छंद, जिसमें तुलसी दास जी का रामायण लिखा गया है. उस चौपाई छंद का अंतरंग हम अगले आलोख में देखेंगे. उसके पश्चात संस्कृत का महान श्लोक छंद और फिर संस्कृत व हिंदी के अन्य उत्तमतम छंद शिखरिणी, वसंततिलका, पृथ्वी, शार्दूलविक्रीडित, भूजंगप्रयात आदि पाँच श्रेष्ठ छंदों को और फिर अन्य लोकप्रिय तथा विशेष छंदों के अंतरंग दोहा छंद के माध्यम से देखेंगे. आशा है इस ज्ञान परक विवरण से सचेत और प्रेरित होकर कवि जन दोहे लिखते समय दोहे की सीमा-सूत्रों से सजग व सतर्क हो कर इस जानकारी का लाभ उठाएँगे.

विशेष जाने छंद हैं, पृथ्वी, भूजंगप्रयात ।

वसंततिलका, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित ॥

पाँचों छंदों के यहाँ, देंगे हम दृष्टांत ।

क्यों की माना है इन्हें, छंद के काँत ॥

उद्बोधन :

आशा है इस ज्ञान परक विवरण से प्रेरित और सचेत होकर कवि जन दोहे लिखते समय दोहे की सीमा-सूत्रों से सजग व सतर्क हों और इस जानकारी का लाभ उठाएँगे. इस आलेख के आरंभ में छंद व्याख्या विवरण विस्तृत दिया गया है, अतः आगामी छंद-अंतरंग आलेखों में पुनः उसी वर्णन की विस्तीर्ण पुनरावृत्ति नहीं की जाएगी. कृपया वहाँ भी इसी जानकारी का संदर्भ ग्रहण करें.

संदर्भ (References) :

1. ज्ञा, पं. रामचन्द्र व्याकरणाचार्य; रूपचन्द्रिका; हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला 156; चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, सं 2051.
2. Apte, Vaman Shivram; The Practical Sanskrit English Dictionary; MLBD Publishers. Pvt. Ltd, Dehli, 1998.
3. भानु, छंदःप्रभाकर, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 1996
4. गोयल, डॉ. प्रीतिप्रभा; संस्कृत व्याकरण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2000

3

History of Indentured Labourers in Mauritius

Allgoo, Rajpalsingh, Mauritius, MBE, MSK.
President of MLC, 1993, Mauritius

History of Indentured Labourers in Mauritius

A DRAFT DOCUMENT



Introduction to Indenture

Indenture was a worldwide phenomenon which started in the nineteenth century. It was initiated by the British in Mauritius and was considered as an experiment. The Great Experiment after the abolition of slavery was to demonstrate to the world the superiority of “free” labour over slave labour. Indenture involved the mass migration of workers from India, China, Africa and South East Asia to labour- importing colonies. Mauritius was the first country which had recourse to indentured labour. Other British, French and Dutch colonies then adopted the system after its success in Mauritius.

The history of Indenture Labourers from India to Mauritius – 1834 marks the beginning of the arrival of Indentured laborers’ in Mauritius under the Colonial Government. On the 1st August a vessel named “Sarah Berthered reached Port Louis on it board, the first group of 39 indenture Labourers were from South India.

But Indian presence on the island goes beyond 1834. The difference laid in the status. In 1806, during the French era, 1 600 Indian slaves lived on the island. They were cooks and marine carpenters from Pondicherry and the south of India.

On August 1st, Sarah berthed in the Port Louis depot with the first 39 indentured laborers’ from South India. On November 2, 1834, Atlas – another vessel – arrived – this time with an additional 36 Indian laborers’. Most of them were from Bihar and were destined to the sugar estate of Antoinette, in the region of Piton.

These indentured laborers’ were named « Girmitia », meaning, « terms of agreement ». They embarked in the port of Bhawaneepore, in Calcutta, next to Ghanta Ghar or the Clock Tower. The voyage from India to Mauritius spanned on 39 days. The vessels which sailed to Mauritius were known as « Coolie Ships ».. The Indian and Mauritian governments unveiled a monument on January 11, 2011, at the Kidderpore *Depot to commemorate this port of embarkation.*

A monthly salary of Rs. 5/-

From 1834 to 1870 approximately 362,150 immigrants (289,763 males and 72,387 females) were imported to Mauritius from India. The immigration of the indentured laborers’ was supposed to be on a temporary basis. However, once on the island, the small planters and the sugar estates found all sorts of reasons to manipulate and retain them for longer than what was stipulated in their contracts. In 1847, the State also judged that the quota of female indentured laborers’ be not less than 25%. This is how short term immigration turned into lasting one. This was a strategy used by the government and planters; firstly to discourage the male immigrants to return to their country of origin and secondly give them reasons (women and money) to stay in Mauritius. The immigrants settled on the plantation fields. With this massive labour force working on the sugar cane fields, the economy of the country was boosted. This form of exploitation turned out to be very profitable for the sugar barons and small planters.

Recognition to the indentured laborers’ of Mauritius

THE 2nd November 2003 marks the 169th anniversary of the arrival of the first indentured Indian immigrants in Mauritius. The 2nd November is a public holiday of national commemoration because it is a day of deep reflection on the great toils and struggles of the indentured laborers’ and their contribution in the fashioning of Mauritius.

The pioneer indentured laborers’

Recent research at the Mauritius Archives has provided new information on the indentured laborers’ who came to Mauritius on the Atlas on Sunday, 2nd November 1834. The story of these pioneer Indian laborers’ began almost two months earlier in Calcutta, India. On 10th September 1834, 36 Hill Coolies of the Dhangar caste (originally from the hills of Bihar in eastern India who were then living in Calcutta) signed a five-year labour contract with George Charles Arbuthnot of Hunter-

Arbuthnot & Company, a major British trading company in Mauritius, in the presence of C. McFarlan, at the Calcutta Police Head Office. MacFarlan, the Chief Magistrate of Calcutta, read and explained in detail the contract to the Indian laborers' with the help of an Indian interpreter. Once the laborers' agreed to the terms and conditions, they placed their thumb mark on the contract and on a separate list, which contained the names of the 36 Coolies, they placed an X next to their names. The sirdar of these laborers' was called Soorooop who was assisted by Subaram. In all, there were 30 males and 6 females among Arbuthnot's coolies, some of their names were Callachaund, Dookhun, Bhomarah, Bhoodhoo, Lungon, and Bhudhram. The labour contract, which these laborers' signed, was written in Bengali. Furthermore, the salary for the males was Rs 5. Five rupees per month and for the females only Rs 4. Four rupees per month. The sirdar was paid ten rupees per month and the assistant sirdar around eight rupees per month. In fact, they all received six months' pay in advance before boarding the Atlas. It was Hunter Arbuthnot & Company that paid for their journey from Calcutta to Port Louis. As a result, one rupee was deducted from their monthly wages by that British company for the return passage to India and they were also going to be provided with food, clothing, lodging and medical care.

The Arrival of Arbuthnot's Coolies

On the same day that the labour contract was signed, MacFarlan sent a letter to H. Prinsep, the Secretary to the Government of the Bengal Presidency, informing him of the agreement. The Chief Magistrate requested the Vice-President and Governing Council of the Bengal Presidency to give their stamp of approval to the contract and to allow the laborers' to sail for Mauritius. On 15th September, the Vice-President in Council gave his assent to the contract. On the very same day, the 36 Hill Coolies embarked on the Atlas and began their historic voyage to British Mauritius. The Atlas was under command of Captain Hustwick and was also transporting George Arbuthnot and other passengers as well as a large cargo of rice. After a long voyage of more than six weeks, the Atlas sailed into Port Louis harbour on Sunday afternoon, 2nd November 1834. However, George Arbuthnot had to wait until the following day before starting the formalities in order for his laborers' to be landed on Mauritian soil. On Monday morning, 3rd November, Arbuthnot, wrote an official letter on behalf of Hunter-Arbuthnot & Company to Governor Nicolay, which requested that: 'they be allowed to land 36 Hill Coolies from the ship Atlas, whom they intend to employ on their Estate, under guarantee that they shall not become a charge on the Colony?'. Hunter-Arbuthnot & Company provided Governor Nicolay with a financial guarantee which was kept in trust by the local colonial government in the Colonial Treasury and would be returned to that British company after the five-year contract of the laborers' had expired. As a result, during the afternoon of 3rd November, permission for the landing of the laborers' was given by the British governor. However, it was only on Tuesday morning, 4th November, that the 36 Hill Coolies were landed close to the old Customs House, not far from the present-day Aapravasi Ghat. Later that same day, Arbuthnot's coolies were taken to Belle Alliance Sugar Estate near present-day Piton, in Rivière du Rempart. In 1834, Belle Alliance was owned by Hunter-Arbuthnot & Company and it stretched over an area of 502 acres and had a workforce of between 190 to 200 slaves. The Indian laborers' worked from sunrise to sunset, six days a week and they were also required to perform light duties on Sundays. Thus, they worked side by side with the slaves of Belle Alliance in the sugarcane fields. The arrival of Arbuthnot's coolies is the particular event that is commemorated each year on 2nd November at the Aapravasi Ghat.

The Demographic Revolution

Between the mid-1830s and early 1860s, at the same time that Mauritius was going through a prolonged sugar revolution, it was also going through a demographic revolution. After all, in 1834, the Indians made up less than 4 % of the colony's total population and by 1860, they constituted more than 66% of the total population. This fact is not surprising because in 1949, Rene Kuczynski, a famous British colonial demographer, explained that between 1834 and 1910, around 451 796 Indian laborers' (346 036 males, 105 760 females) were brought to Mauritius. During that same period, around 294 257 laborers' remained in the colony, while 157 539 (128 761 males, 28 778 females) returned mostly to India, with some migrating to Natal in South Africa, British Guyana, Trinidad and Fiji.

Resistance of the Indian laborers'

Between the 1840s and 1860s, the British colonial government of Mauritius passed laws which sanctioned the double cut system (or a system under which a worker lost two days' pay for being absent from work for one day), restricted the freedom of movement of the Indian laborers', enacted a pass law, allowed for corporal punishment, and extended their labour contract. By the 1860s, an extremely repressive system was set into place which was enforced by the colonial police for the benefit of

the sugar planters. The height of this repression lasted between 1860 and 1880. Fortunately, the Indian laborers' actively resisted by organizing strikes and filing complaints against their employers or the sugar estate owners. Between 1860 and 1885, the sugar estate laborers' filed 110 940 complaints with the stipendiary magistrates and Protector of Immigrants against their employers or an average of 4437 per annum, with 72% of these complaints concerning non-payment of wages. Most of the employers were found guilty by the stipendiary magistrates and forced to pay. But, it also became evident that the laborers' needed an ally and when they looked for a defender and spokesperson for their valiant cause, they found one in Adolphe de Plevitz, a sugar planter from Nouvelle-Découverte. Ever since the late 1860s, de Plevitz became concerned about the terrible plight of the Indian laborers'. In 1870, he wrote a petition (also called the Adolphe de Plevitz Petition on their behalf and it was signed by 9 401 Indian immigrants. Eventually, this historic petition was sent to Governor Gordon by Adolphe de Plevitz himself. Between 1872 and 1873, a Royal Commission of Inquiry was appointed by the British imperial government in London and sent to Mauritius. For many months, it carried out a lengthy investigation into the working and living conditions as well as the grievances of the island's Indian laborers'.

In 1875, in their voluminous report, the Commissioners made several recommendations to alleviate the terrible plight of the colony's laborers'. Gradually, between the late 1870s and early 1920s, the repressive apparatus of the indenture system was being dismantled.

However, during that same period, there were few improvements in the economic, social, and political conditions of the indentured laborers' and their descendants in Mauritius. In 1922, a new Labour Law was enacted by the Council of Government which hardly brought any changes to the working and living conditions of Mauritian workers on the sugar estates.

Maharaj Kunwar Singh's Report

From 1906 to 1910, only 1 736 laborers' arrived in Mauritius from the Indian subcontinent. Furthermore, between 1923 and 1924, around 1395 laborers' landed at the Aapravasi Ghat and in May 1924, the last batch of Indian immigrants set foot on Mauritian soil. By December 1924, more than half of these laborers' were not satisfied with their working conditions and opted to return to India. In January 1925, Kunwar Maharaj Singh, a high-ranking officer of the United Province Civil Service in India and a member of an aristocratic dynasty of Oudh, was despatched by the British Government of India to Mauritius.

Hugh Tinker, a British historian, eloquently observes:

At last, an Indian official of standing had been deputed to examine the situation of overseas Indians Maharaj Singh's objective was to investigate the economic and social conditions of the Indians in Mauritius and whether the colony really needed to import additional Indian laborers'. On 27th February 1925, Maharaj Singh submitted his report to the British Government of India. He mentioned that Indian laborers' had achieved a great deal economic integration in the colony and strongly recommended that Indian indenture should be terminated. Singh concluded:

Indentured labour made the immigrant forget his home and his people. He came to Mauritius to settle for life and often re-indentured. He passed a life of great difficulty and he worked hard and the system of morcellement helped him to acquire land in proprietary tenure. In general Indians have bettered their conditions in Mauritius. The Indo-Mauritian agriculturalist is better clothed than his confrere in India and, though the houses are poor, the furniture in them showed a higher standard of living. the further dispatch of unskilled labour from India to Mauritius is unnecessary and undesirable either in the immediate or in the near future. Within a few weeks after Maharaj Kunwar Singh submitted his report, the British Government of India accepted his recommendation and no more Indian indentured laborers' were sent to Mauritius.

The indenture system abolished

While active Indian immigration came to an end in 1924, it certainly did not mean that the indenture system was abolished and this process officially took place only between 1938 and 1939. In November 1938, the local British government replaced the Labour Law of 1922 with the Labour Ordinance of November 1938. This new labour law brought the protection, regulations for payment of wages as well as working hours and all matters concerning the Mauritian workers under the

control of the Labour Department. It became law in January 1939 and during November of the same year, through Ordinance No.47, the title of the Office of the Protector of Immigrants and Poor Law Commissioner was changed to that of Director of Labour. In effect, the Protector of Immigrants was officially replaced by the Director of Labour. Without doubt, these actions brought an end to a system which had existed for a century in British Mauritius. In conclusion, it is through their labour and sacrifices that the indentured laborers' of Mauritius were able to play a major role in the lengthy process of transforming a little known and rugged island into a prosperous country which serves as a shining beacon to the rest of the world. Therefore, each year, on 2nd November, their achievements and legacy must be honoured by the Government of Mauritius and the Mauritian people.

Return passages

The basic principle of indentureship was that indentured labourers were provided with a free return passage at the end of their contract. The term 'free passage' was deceiving as in reality the labourers were paying the 68 Ibid., p 49. Comparing the Indenture System in different colonies 36 charges. In Mauritius, the contracts passed with immigrants allowed for up to one fifth of the wages of labourers to be retained by their employer until the expiration of the terms of contracts. The money was used to pay for the return passage of the labourer. If the latter decided to re-engage himself, the money was given back to him.⁶⁹ In the West Indies as well as in Mauritius, earliest ordinances provided for a free return passage for immigrants but after 1854, only when an immigrant had lived for ten years in one West Indian colony did he become entitled to a free return passage. After 1895, in British Guiana, he had to pay part of the cost, a quarter until 1898 and after that a half. Later on, only the invalids and the destitute were entitled to a free passage in Mauritius as well as in the West Indies

The Old Immigrants and the Adolphe de Plevitz Petition

The first fighter who took the defense was Adolphe de Plevitz. was not a union leader but his fight in favour of the downtrodden indentured laborers' has been written in golden letters in the pages of our **turbulent** history. Adolphe de Plevitz, immigrants' Messiah was White planters of the 19th century meted out the very cruel treatment to the Indian indentured laborers'. In 1867, Governor Henry Barkly introduced a Labour Law which, he said, was going to bring "a new era of social improvement." However in real fact, far from the pretended era of social improvement, or improving the conditions of the laborers', it only helped to push them further down into the quagmire of misery and desolation. During this period, many of these Old Immigrants felt that they had met their legal obligation with their employers by serving their mandatory five-year indenture contract or period of industrial residence. As a result, most of them believed that they were free or had the freedom to continue working on the sugar estates or leave estate labour in search of better working and living conditions and new opportunities in Port Louis as well as in the colony's other towns and newly established villages. These ideas and beliefs formed an integral part of the worldview of the Old Immigrants, as Vijaya Teelock, a Mauritian historian, observes:

"Freedom, according to the slave and indentured, included also the concept of autonomy: having lived for some generations in bondage, a keen sense of autonomy seems to have developed. This seems to have emerged directly out of their experience as enslaved and indentured. In both, some chose to remain autonomous at the risk of poverty.

The Signatures of Immigrants Chocalingum and Roopram in the de Plevitz Petition in May 1871

The idea of freedom and worldview of the ex-indentured laborers' are briefly referred to in the petition which was drafted on their behalf by Adolphe de Plevitz starting in 1869. He was the estate manager of Nouvelle Decouverte Sugar Estate, the son-in-law of a Franco-Mauritian planter and described as being of German descent. He was considered to be a humanist who was sincerely concerned about the sufferings of the Indian immigrants. He played a key role in arousing their consciousness and encouraged the immigrants to fight for their rights.

While writing about their numerous complaints and hardships, de Plevitz mentioned on their behalf to Governor Sir Hamilton Gordon:

"That your Petitioners suffer many and great grievances from the existing laws of which they are deprived of that freedom which all other inhabitants of Mauritius enjoy... Your Petitioners are required at all times and always carry with them a ticket with their photograph and a police pass."

Immigrant Chocalingum arrived in Mauritius in 1843 and signed the de Plevitz Petition in 1871 when he was a Sirdar. Immigrant Roopram arrived in Mauritius in 1846 and signed the de Plevitz Petition in 1871 when he was a Small Property Owner.

Between 1869 and 1871, de Plevitz regularly met and organized meetings with the Old and New Immigrants at Nouvelle Decouverte Sugar Estate. He undertook this initiative in order to understand their plight and grievances and provide them with some type of assistance. At the beginning of 1871, de Plevitz called an important meeting, which was attended by hundreds of Old Immigrants, at Long Mountain. By June 1871, around 9,401 Old Immigrants, including Immigrants Chocalingum and Roopram, signed their names or placed their marks and immigrant numbers on a total of 300 sheets of paper which were eventually annexed to the petition.

The petition of de Plevitz and the signatures of thousands of Old Immigrants, such as Chocalingum and Roopram, led to the setting up of the Police Inquiry Commission of 1871, the Royal Commission of 1875, the establishment of inspectors of the immigration system in Mauritius and a very limited reform of the labour laws. This petition is one of the most important documents in the history of indentured labour in Mauritius and the ultimate statement of the great discontent and resistance of the Indian immigrants against what they saw as being an oppressive and inhumane system. Today, their acts of resistance and struggle for better working and living conditions, just like those of their Mauritian descendants, are honored and remembered on each Labour Day.

The Plight of the Indentured Labourers after abolition

The workers were forced to work like machines and made to live as animals. The working, living and social conditions were as follows:

1. They had no fixed hours of work. Starting before sunrise they were required to go on responding to the whims and caprices of their supervisors;
2. They had no set time for lunch. Some days, it could be as late – 2.00 p.m.
3. The wages varied between 30 & 40 cents per day;
4. They were forced to give certain a percentage of their earnings to their supervisors;
5. They were often abused and ill-treated by the foremen and Supervisors, and dismissed on flimsy grounds even without any reason;
6. They lived in small thatched rooms with only one door and no other openings;
7. They wore tattered rags;
8. They had few utensils, two wooden beds or mattresses made of grass and used as bed sheets and covers;
9. Their food consisted of some boiled rice, or farata and one dholl or vegetables;
10. They could not do anything to have a satisfactory social status as they received meagre wages which were not enough to buy food and clothes let alone a about decent living. In cases of sickness, they could not even afford to buy medicine. They thus used traditional medicines.
11. Education was not a priority, their children were to help the father and mother in the sugar canes fields. No one told them about the working conditions.
12. A ruthless capitalist system was set up to crush the wishes of the workers who had begun to think that the rich had been sent by God to enjoy all the good things. They had been made to believe it that was their sacred duty to serve the rich planters.

The Indenture System Abolished

While active Indian immigration came to an end in 1924, it certainly did not mean that the indenture system was abolished and this practice officially took place 1938. In November 1938, the local British government replaced the Labour Law of 1922 with the Labour Ordinance of November 1938. This new labour law brought the protection, regulations for payment of wages as well as working hours and all matters concerning the Mauritian workers under the control of the Labour Department.

It became law in January 1939 and during November of the same year, through Ordinance No.47, the title of the Office of the Protector of Immigrants and Poor Law Commissioner was changed to that of Director of Labour. In effect, the Protector of

Immigrants was officially replaced by the Director of Labour. Without doubt, these actions brought an end to a system which had existed for a century in British Mauritius.

During the 1840s and after, the old immigrants, or those who had served their five-year contracts and remained in Mauritius, had saved some money and began to settle outside the sugar estates. They either bought or squatted on small patches of land in the rural areas and some even married ex-slave women and others settled in Port Louis. Gradually, between the 1840s and 1860s, a small rural Indian peasantry was emerging as they acquired small patches of marginal lands and became small cultivators and raised domesticated animals. At the same time, others became small traders and hawkers.

It was only really between the 1870s and 1920s that a large and important class of rural Indian landowners began to emerge in Mauritius. During the last thirty years of the nineteenth century, with the stagnation and gradual decline of the sugar industry, many of the sugar barons sold their marginal lands which were located on the fringe of their sugar estates to thousands of old Indian immigrants and a few Indian merchants and traders in what became known, according to Richard B. Allen, an American historian, as the 'Great Morcellement Movement'.

In Mauritius, Ordinance no 16. of 1835, was designed to combat so called "idleness" of apprentices and to legislate indentured labour. The contract made punishable by forfeiture of wages or imprisonment with or without hard labour where a Servant without reasonable cause 3 (a) neglected or refused to attend work 3 MA. SD 15/7. Despatch from Governor to Secretary of State., , 23 January 1836 Ordinance 16 Of 1835. Indenture System in the nineteenth century 5 (b) was guilty of absence, disobedience of orders, insolence, gross neglect of duty or other misconduct in the service of the employer, (c) quitted service before the expiry of the contract.

Article 10 of Ordinance 16 of 1835: Any labourer, workman or apprentice above the age of 14 years who shall commit a serious offence or who shall not fulfill the conditions of his contract, or act of apprenticeship, whether by a refusal to work, negligence, bad will, absence or otherwise, shall independently of the special conditions embodied in the contract or act of apprenticeship, be sentenced to a pay a fine not exceeding £ 5 or to imprisonment with or without hard labour for a period of not more than three months .4 Furthermore, the ordinance also prohibited the formation of associations of laborers' having as objective to terminate their contract or claim increase in wages: Article 16 of Ordinance 16 of 1835: Labourers, workmen or apprentices who shall form to the number of three or more, an association or conspiracy having for its object to quit or neglect their service or to change the conditions of their contract, or to enforce an increase of wages, shall be punished by imprisonment with or without hard labour for any period not exceeding six months .

Adolphe de Plevitz, immigrants' Messiah

The first fighter who took the defense was Adolphe de Plevitz. was not a union leader but his fight in favour of the downtrodden indentured laborers' has been written in golden letters in the pages of our **turbulent** history.

Adolphe de Plevitz, immigrants' Messiah was White planters of the 19th century meted out the very cruel treatment to the Indian indentured laborers'. In 1867, Governor Henry Barkly introduced a Labour Law which, he said, was going to bring "a new era of social improvement." However in real fact, far from the pretended era of social improvement, or improving the conditions of the laborers', it only helped to push them further down into the quagmire of misery and desolation.

The callousness and depravity of the White masters was severely condemned by a young White estate manager, Adolphe de Plevitz, who arrived in the colony in 1858. He was sickened at the plight of the laborers'. He was simply disgusted by the way they were treated. The White behaved as if these workers were not human beings but a batch of objects to be used.

Adolphe de Plevitz was born in Paris in August 1837. At the death of his father in 1850, he was sent to live with an uncle in Germany. A few years later he came back to Paris where he joined the French army and became a Lieutenant at the tender age of seventeen. He is also reported to have adopted the British nationality and enrolled himself in the British army. He had postings in Africa, India and Madagascar, thus getting the opportunity to learn the languages of the countries where he served, including Hindi.

He landed in Mauritius on September 4, 1858 at the age of 21. He soon obtained a job as a Forest Ranger, a position which he kept for two years until 1860. The same year he got married to Marie Emilie, daughter of Francois Rivet. After their marriage the couple lived at Cassis until 1869, when they moved to Nouvelle Découverte where Adolphe took charge of the plantation of his father-in-law.

The 175,000 Indian indentured laborers' found a saviour at last, as Adolphe de Plevitz started militating for better working and living conditions for them. The afflictions of the laborers' were consolidated by the Labour Law of 1867 which was efficiently enforced by the Inspector General of Police. Adolphe de Plevitz saw the hardships of the laborers' and empathised with them. He championed the cause of these downtrodden and oppressed underdogs.

In a bid to erase some of their hardships and miseries, De Plevitz addressed a petition to the Governor of the day, Sir Arthur Gordon, exposing the grievances of the laborers' and pressing for reforms. The petition contained 9,400 signatures and thumbprints and was submitted on 6th June 1871. It had been drafted by Godfrey Soobhanee, a Head teacher, Stevens, a retired soldier, and Professor Rajurathnam Mudaliar of Royal College, Cure pipe. The petition was addressed to Queen Victoria, with copies to the State Secretary, the British parliamentarians, the London press and the authorities in India. It gave a vivid description of the execrable ordeals of the sugarcane workers.

On 30th October of the same year, the capitalist class sent a counter petition with 900 signatures expressing their approval of the conduct of the authorities and requesting the Governor to order the immediate expulsion of the "alien," Mr. de Plevitz, from the colony.

The Governor, Sir Arthur Gordon, did not pay much heed to this petition, although a question was addressed to him in the Legislative Council by Sir Virgile Naz as to the steps His Excellency was intending to take in order to "prevent the falsehoods and calumnies of Mr. de Plevitz from being propagated here and abroad."

As luck would have it for de Plevitz and the indentured laborers', the Chamber of Agriculture unwittingly committed a catastrophic blunder at a meeting on November 13, 1871. It unanimously adopted a motion which offered the Governor either of two choices: (i) "To take the earliest opportunity of refuting the malicious assertions contained in the libel, in order that the Home Government and the Indian authorities should be made acquainted with the truth:" (ii) "In case His Excellency the Governor should not find reason to accede to our request, Her Majesty may be prayed to name a competent Commission to inquire fully and fairly into all the circumstances, and report on the conditions of laborers' employed in the colony."

The Governor was also requested to "express repudiation of the aspersions made on the planters by a foreign adventurer" and to discredit "the miserable libel written by Mr. de Plevitz". By asking a Commission of Inquiry, the Chamber of Agriculture was anticipating the appointment of a Commission made up of members selected locally, that would clear the planters of all blame. But that was counting without the sagacity of Sir Arthur who took them by surprise by acceding to their request and asking the Secretary of State, Lord Kimberley to appoint a Royal Commission.

The Royal Commissioners, Frere and Williamson, arrived in Mauritius on April 7, 1872 and were given offices at the Line Barracks in Port Louis. They had several sittings and also went all over the island. They visited 51 sugar estates and interviewed hundreds of people. In the course of the inquiry, de Plevitz put up a very strong fight in favour of the laborers'. He was not a lawyer but he acted as counsel for the immigrants.

The Commissioners were fully satisfied that the points raised in de Plevitz's petition reflected the truth. Both the police and the Protector of Immigrants were severely censured. The police were blamed for their high-handedness towards the immigrants, while the Protector of Immigrants was rebuked for turning a deaf ear to the complaints of the laborers'. It came to light that just in one year some 5,000 complaints had been made but the Protector feigned ignorance of any complaint.

The Commission of Inquiry also recommended, among others, that the "vexatious and arbitrary" Labour Law of 1867 be repealed and replaced by another.

However the new laws didn't completely change the plight of the laborers' who continued to suffer the whims and caprices of the planters. The laborers' were considered as the private property of the estate, just like slaves were before them.

From time to time laborers' and artisans came together to fight for their rights and for the betterment of their working and housing conditions. But the mobilization of the working class was slow. An impetus was needed: And it came from a man named Manilal Doctor.

Manilal Doctor in Mauritius

During an afternoon meeting in 1906, Mohandas Karamchand Gandhi requested Manilal Doctor to go to Mauritius in order to help organize the local Indo-Mauritian community and fight for their social, political and economic rights. After some thought, he agreed to travel to the British crown colony and to help with the social and political struggle of the Indo-Mauritians.

Between 1907 and 1911, Manilal Doctor undertook numerous activities to highlight and help to alleviate the terrible plight of the island's Indo-Mauritians, the indentured and non-indentured workers. In 1907, when he presented himself at the Supreme Court, in order to obtain permission to practise law in Mauritius, Manilal refused to remove his turban in court just as Gandhi had done in the 1890s in South Africa.

Mr Doctor provided free legal advice in cases where indentured workers and former indentured workers were being prosecuted and ill-treated by their employers. He also campaigned for an end to immigration, the abolition of the double cut system, the corvée system and vagrancy laws. In 1909, when the Swettenham Royal Commission, aka the Royal Commission of 1909, came to Mauritius, he acted as the spokesman for the Indo-Mauritian workers just as Adolphe de Plevitz had done almost four decades earlier.

During this period, Manilal Doctor traveled through all of the island's villages and held dozens of meetings with the sugar estate workers and small planters in order to make them aware of the economic, social and political issues which affected their daily lives. His actions helped to shape the consciousness of the Indian workers and small planters. As a journalist, he founded the newspaper, The Hindustani which published articles in Hindi, English and Gujarati and focused mainly on issues concerning the Indo-Mauritian community. The motto of his newspaper was "Liberty of Individuals! Fraternity of Men!!! Equality of Race!!!". It should be noted that on 15th March 1909, when the first edition of The Hindustani was printed, a multi-faith prayer of Hindu, Moslem, Christian and Buddhist priests was organized as a blessing for the new publication.

M. Doctor also published articles in Le Petit Journal, the newspaper of the Action Libérale, a prominent local Mauritian political party. Manilal worked in close collaboration with Dr. Eugène Laurent and Anatole de Boucherville of the Action Libérale and the Muslim merchants of Port Louis to highlight the grievances of the downtrodden and oppressed of the colony. Manilal Doctor also played a central role in the establishment of the Arya Samaj in Mauritius. In addition, he founded the Young Men's Hindu Association with the objective of organizing the island's young Hindus in order for them to know their rights, undertake community action and help the poor such as the indentured labourers. In 1911, when Manilal Doctor left for India, he was accompanied by R.K. Boodhun and Pandit Cashinath Kistoe.

**Dr. Jules Maurice Cure Founder of the Mauritius Labour Party
was other one who defended the working Class in 1930s'**

Slavery was abolished long ago and the importation of Indenture laborers' from India was stopped more than a decade. He approached the Colonial Government, so as to eradicate the suffering of the working class, but unfortunately no authority listened to him. When he was an elected member of the Council, he had pleaded in favour of better working conditions of the working class {the former Slaves and Indenture laborers'}. Dr Curé also raised the question to amend the constitution of Mauritius so that the working class could elect their Representatives in the Council of Government.

After being unsuccessful in different ways to protect the working class and small planters, Dr Curé and his close collaborators (Pandit Sahadeo Rama, Dr Hassenjee Jeetoo, and Barthélemy Ohsan) and others decided to alert the public opinion and especially the British Government by organising a mass meeting. He organised a mass meeting at Champ de Mars, which were attended by more than 30,000 persons, including laborers', artisans and small planters on the 23 February 1936. The main object of the meeting was to sensitise the people for economic and Constitutional reforms on behalf of the working classes. The following resolutions were voted:

- (1) Minimum Wages;
- (2) Unemployment Benefits
- (3) Old-Age pension
- (4) Universal suffrage for laborers', artisans and small planters;
- (5) Freedom to organise Trade Unions
- (6) Workmen's compensation and protection against accidents and illness;
- (7) Safeguards for women and children.

A petition was signed by 330 planters of Bon Accueil and Brisée Verdière and was given, over to Dr Maurice Curé on the 6th August, 1936, which was despatched to the Governor. The grievances were as follows:

- (1) 15% cut by the Union (FUEL) Sans Souci and Riche Fund estates on the Uba cane;
- (2) the insufficiency of their wages which, according to them, varied between 40-60 cents daily during crop season and a maximum of 40 cents during intercrop;
- (3) the treatment they received at the hands of Sirdars and the recruiting and paying agents.

Thanks to Joseph Guy Rozemont Former President of the Mauritius Labour Party and President of Mauritius Trade Union Congress who presented a motion to the Legislation Council in 1950s'. During the past seventy-five years, Labour Day, or 1st of May, has been commemorated by Mauritian workers and politicians through public speeches, meetings and wreath laying ceremonies. It is a day of deep reflection on important universal values such as individual freedom, human equality and human rights as well as the social and political rights of all Mauritian workers. It is also a special day when the resistance of Mauritian workers against oppression and their struggle for greater freedom is being commemorated. However, three quarters of a century before the genesis of the struggle of the Mauritian working class, during the 1930s and the 1940s, it was the Indian immigrants who fought for their rights and better living and working conditions on and off the sugar estates.

Recognition to the indentured laborers' of Mauritius

THE 2nd November 2003 marks the 169th anniversary of the arrival of the first indentured Indian immigrants in Mauritius. The 2nd November is a public holiday of national commemoration because it is a day of deep reflection on the great toils and struggles of the indentured laborers' and their contribution in the fashioning of Mauritius.

Today, through the Aapravasi Ghat, where the Indian immigrants landed, their descendants pay homage to the memory of those hard workers, every 2nd of November. Thanks to Mr Bhickramsing Ramlallah, a former member of Legislative Assembly and Journalist, this date has been a landmark in the remembrance of indentured labourers' legacy in Mauritius. But now the time is ripe to also remember all those who fought for the rights of the Indian immigrants.

4

पंडित रामनारायण मिश्र की शिक्षा को देन : प्रथम अखिल एशियाई शिक्षा सम्मेलन

डॉ. प्रो. एन. के. चतुर्वेदी, जोधपुर



औपनिवेशिक भारत में शिक्षा के उन्नयन में अनेक शिक्षाविदों का योगदान रहा है। इन पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, सर आशुतोष मुखर्जी, पं. मदन मोहन मालवीय, सर सैयद अहमद खां, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, महात्मा गांधी, लाला सीताराम चतुर्वेदी सदृश सैकड़ों शिक्षाविदों ने भारत में विविध माध्यमों द्वारा एवं शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर उसके उन्नयन एवं प्रचार-प्रसार का प्रयास किया, परन्तु इन सभी का कार्यक्षेत्र शिक्षा का कोई एक स्तर एवं भारत तक ही सीमित था। संपूर्ण औपनिवेशिक काल में पं. रामनारायण मिश्र एकमात्र ऐसे शिक्षाशास्त्री हुए जिन्होंने भारत में विविध शिक्षण संस्थाओं की स्थापना एवं प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक में योगदान देते हुए छात्रों के स्वास्थ्य एवं चरित्र निर्माण पर तो बल दिया ही, साथ ही, समूचे एशिया महाद्वीप में शिक्षा का एक व्यापक अभियान शुरू करने का प्रयास किया और इस कार्य में काफी हद तक सफल भी रहे।



पं० रामनारायण मिश्र

पं० रामनारायण मिश्र (सं. 1933 - सं. 2009) का जन्म आषाढ कृ. 11, सं. 1933वि. को दिल्ली में हुआ था परन्तु इनके पूर्वज अमृतसर के रहने वाले थे। इनके पिताजी का नाम चिरंजीव मिश्र था। जब रामनारायण मिश्र सात वर्ष के थे तभी इनके मामा डॉ. छन्नूलाल ने, जो बनारस में असिस्टेंट सर्जन थे और 1893ई० के शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन में काशी आर्य समाज का प्रतिनिधित्व किया था, इन्हें इनके माता-पिता सहित बनारस बुला लिया और यहीं बनारस क्वींस कालेज में इनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई जहाँ इन्हें फ़ारसी पढ़ाया गया और एफ. ए. तक इन्होंने फ़ारसी पढ़ी। रामनारायण मिश्र उर्दू-फ़ारसी-अरबी के बहुत अच्छे ज्ञाता थे और अंग्रेजी तो उनकी आरम्भ से ही अत्युत्कृष्ट थी पर उनका नैसर्गिक

प्रेम हिन्दी-नागरी के प्रति था, जो आजीवन बना रहा। इसका कारण यह था कि रामनारायण मिश्र बचपन से ही चंद्रकान्ता के रचयिता देवकी नन्दन खत्री, पं. अम्बिका दत्त व्यास, भारत जीवन पत्र के संचालक बाबू रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन के सम्पादक बाबू कार्तिक प्रसाद, सुदर्शन के संपादक पं० माधव प्रसाद मिश्र जैसे उत्कृष्ट हिन्दी साहित्यकारों के सानिध्य में रहे थे और बाबू श्याम सुन्दर दास उनके पड़ोसी, मित्र और सहयोगी थे। क्वींस कालेज से ही 1900ई. में उन्होंने बी.ए. पास किया। इनका विवाह 16 वर्ष की आयु में द्रौपदी देवी से हुआ जिनसे कुल छः संताने हुई- पांच पुत्रियां-शिवदेवी, ललतोदेवी, ज्ञानदेवी, धर्मदेवी एवं शांतिदेवी तथा एकमात्र पुत्र श्रीशचंद्र शर्मा।

रामनारायण मिश्र के मामा डॉ. छन्नूलाल आर्यसमाजी थे और उनके यहां पंजाब और अन्य प्रांतों के बड़े-बड़े आर्यसमाजी नेता आते रहते थे अतः उसका प्रभाव रामनारायण मिश्र पर भी पड़ा। वे आर्य समाज के सिद्धांतों से काफी प्रभावित थे और अपने व्यवहारिक जीवन में उसका पालन भी करते थे। रामनारायण मिश्र पर स्वामी दयानन्द सरस्वती, महादेव गोविन्द रानाडे और पं. मदन मोहन मालवीय के विचारों और कार्यों का काफी प्रभाव था। काशी आर्य समाज के वे प्रतिष्ठित कार्यकर्ता थे परन्तु उनमें किसी प्रकार की कट्टरता न थी और अन्य मतों, धर्मों एवं विचारों के प्रति भी उनका व्यवहार आदरपूर्ण था। समाज सुधार के सम्बन्ध में वे आर्य समाज के ही विचारों को मानते थे-बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा एवं अस्पृश्यता आदि के विरोधी थे तथा शुद्धि, विधवा-विवाह, स्त्री-शिक्षा आदि के समर्थक थे और आजीवन इन बातों पर अमल किया।

संवत् 1967 में बनारस के हरिश्चंद्र हाईस्कूल के मंत्री बाबू गोविंद दास ने सरकार से लोन के रूप में एक योग्य तथा अनुभवी नवयुवक की मांग की फलस्वरूप गवर्नमेंट ने मिश्रजी को हरिश्चन्द्र हाईस्कूल के प्रधानाध्याक के पद पर भेजा। उस समय काशीपुरा महाल में हरिश्चंद्र स्कूल था जहाँ आस-पास वेश्यालय था। रामनारायण मिश्र ने वहाँ के माहौल को देखा और पद ग्रहण करने के दूसरे दिन ही स्कूल का स्थानांतरण कर दिया। नागरी प्रचारिणी सभा, कंपनी बाग एवं टाउनहाल में अलग-अलग कक्षाएं वृक्षों के नीचे लगाई जाने लगीं। उन्होंने अपने प्रयत्न से वर्तमान हरिश्चंद्र स्कूल की भूमि हस्तगत की और झोपड़ियों का निर्माण कराके स्कूल का कार्य आरंभ किया। अपने प्रयत्न से उन्होंने हरिश्चंद्र स्कूल को एक उत्कृष्ट और नामी स्कूल बना दिया। उस समय काशी में दो स्कूलों की प्रतिष्ठा विशेष रूप से थी, एक हिन्दू स्कूल की और दूसरा हरिश्चंद्र स्कूल की।

कालापानी की सजा :

बनारस में डिप्टी इंस्पेक्टर के पद पर रहते हुए मिश्रजी कई संस्थाओं से जुड़े हुए थे तथा काशी आर्यसमाज के प्रधान होने के नाते बड़ी लगन के साथ अङ्गुलतोद्धार तथा शुद्धि का कार्य करते थे। फलस्वरूप सनातनी विचारधारा वाले और ईसाई लोग कलेक्टर से मिश्रजी की शिथिलता का शिकायत करते थे लस्वरूप गवर्नमेंट ने मिश्रजी को बनारस में 'सब उत्पातों की जड़' समझकर उनकी लोन सर्विस को समाप्त कर उन्हें 'कालापानी' की सजा दी और उन्हें देवरिया भेज दिया। देवरिया को उस समय शिक्षा क्षेत्र का 'कालापानी' कहा जाता था क्योंकि वहाँ अध्यापकों के साथ मारपीट आम बात थी, जिसे खुद उस समय के शिक्षामंत्री सी. वाई. चिंतामणि ने एक आयोजन में स्वीकार किया था। मिश्र जी देवरिया में भी

आशावादी रहे और अपनी निर्भीकता, सादगी, ईमानदारी और अक्लांत निष्ठा से देवरिया का माहौल ही बदल दिया और शिक्षा के क्षेत्र में वहां एक आदर्श स्थापित किया ही साथ ही पड़ोसी रियासतों पडरौना और तमकुही में भी शिक्षा का उचित प्रबंध करवाया।

सेंट्रल हिंदू स्कूल के प्रधानाध्यापक के रूप में :



1922 ई. में मिश्र जी का तबादला खुरजा में प्रधानाध्यापक पदपर कर दिया गया परन्तु पं. मदन मोहन मालवीय ने मिश्रजी की सर्विस लोन के रूप में सरकार से मांग ली और उन्हें बनारस में हिंदू स्कूल का प्रधानाध्यापक बनाया जहां 6 जुलाई, 1922 को उन्होंने पदभार ग्रहण किया। पदभार ग्रहण करने के तुरन्त बाद ही उन्होंने समस्त छात्रों को विद्यालय परिसर में रहने का आदेश दिया और इसके लिए समुचित प्रबंध किया और साथ ही विद्यार्थियों के लिए ऐसी दिनचर्या बनायी कि उनमें नवस्फूर्ति का समावेश होता रहे। मिश्र जी हिन्दू स्कूल में रहते हुए निर्धन एवं असहाय विद्यार्थियों के सहायतार्थ 'विद्यार्थी सहायता सभा' की स्थापना कर रखी थी जिसमें दान के लगभग 75000) रूपये एकत्र कर रखा था और उसके व्याज से लगभग 300) गरीब विद्यार्थियों को फीस, कंबल, पुस्तकें, भोजन तथा छात्रवृत्तियां दी जाती थीं। विद्यार्थियों में ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति बढ़े इसके लिए मालवीय जी के अतिरिक्त महात्मा गांधी, पं. जवाहरलाल नेहरू, लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानंद, भाई परमानंद, सर्वपल्ली राधाकृष्णन् जैसे लोगों के व्याख्यान मिश्र जी स्कूल में करवाते थे और विष्णु दिगंबर पटवर्द्धन, नारायण राव व्यास, रतन जानकर जैसे तत्कालीन प्रतिष्ठित संगीतकारों के संगीत सम्मेलनों का भी आयोजन होता था ताकि विद्यार्थी ललित कलाओं के प्रति आकर्षित हों।

स्त्री शिक्षा के हिमायती :

रामनारायण मिश्र ने स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया। 20वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में स्त्री शिक्षा का नितांत अभाव था। साधन सम्पन्न और सुपठित परिवारों में भी लड़कियों का लिखना-पढ़ना हेय माना जाता था। वे बालिकाओं की शिक्षा तथा उनकी आजादी, छात्रों का चरित्र निर्माण और उनकी आत्मनिर्भरता और आर्य समाज की

जातीय चेतना के पक्के हिमायती थे। उनके स्त्री शिक्षा विषयक विचार उनके मर्यादा पत्रिका भाग 6, संख्या 2-3, 1911 ई. के एक लेख से ज्ञात होता है जिसमें उन्होंने लिखा था “स्त्री शिक्षा किसी देश की उन्नति के लिए एक आवश्यक साधन है। इसमें असाधारण परिश्रम, असाधारण व्यवसाय, धैर्य और असाधारण विद्यानुराग की आवश्यकता है। परिश्रम, व्यवसाय और धैर्य के बिना तो कोई शिक्षा संबंधी काम चल नहीं सकता पर स्त्रियों में विद्या प्रचार के लिए परम विद्यानुरागी भी चाहिए।” बनारस के सनातनधर्मियों ने उन्हें बालिकाओं को शिक्षित करने के लिए जितनी गालियां दी, वे उतनी ही ईमानदारी से इस दिशा में बालिकाओं के लिए स्कूल पर स्कूल खोलते रहे। हिन्दू स्कूल के प्रधानाध्यापक पद पर रहते हुए ही उन्होंने 1924 ई. में ‘हिन्दू बालिका विद्यालय’ की स्थापना की (जो आज केंद्रीय हिंदू बालिका विद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है) और काफी समय तक उसके पदेन मंत्री रहे। उन्होंने घर-घर जाकर लोगों से अपनी लड़कियों को पढ़ाने का आग्रह किया था। बालिकाओं की शिक्षा के प्रति उनकी कटिबद्धता इसी बात से स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने अपनी चारों पुत्रियों को अच्छी शिक्षा दी थी और शहर में चार विद्यालय खोलकर प्रत्येक को एक एक विद्यालय पर पढ़ाने हेतु बैठाया था।

मिश्र जी समाज की आधी आबादी, महिलाओं की, शिक्षा के बहुत बड़े समर्थक थे और तत्कालीन भारत की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में इस संदर्भ में लेख लिखे और महिलाओं की शिक्षा के आन्दोलन को आम जन तक पहुँचाने का उद्योग किया। इस सन्दर्भ में सरकार, रईस और जमींदार लोग शिक्षा के लिए जो कर रहे थे वह केवल बालकों की शिक्षा के लिए थे और बालिकाओं की शिक्षा की उपेक्षा किये जाने पर उन्होंने इस बात की आलोचना की और सरस्वती पत्रिका के भाग-13, संख्या-4, 1912 ई. में लिखा “यदि भारत की जनसंख्या को हम एक ऐसा परिवार मान लें कि जिसमें सौ लड़के और सौ लड़कियां हैं तो लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस परिवार के केवल 25 बालक शिक्षा पाते हैं और 75 घर पर खेलते हैं। परन्तु केवल 4 बालिकायें पाठशाला में जाती हैं और 96 घर रहती हैं। संयुक्त प्रांत में सौ बालकों में 14 को हम स्कूल पढ़ने भेजते हैं परन्तु सौ बालिकाओं में में केवल एक लड़की। इस प्रांत में 562437 बच्चे स्कूल जाते हैं इनमें केवल 42567 बालिकायें हैं और उनमें से भी अधिकांश हिंदुस्तानी ईसाईयों की हैं।” इतना ही नहीं; मिश्र जी ने शिक्षा के संदर्भ में देशवासियों के समक्ष भारतीय ईसाईयों का ही उदाहरण रखा और उन्हीं से ही प्रेरणा लेने की बात कही और इसी लेख में लिखा कि “जिन ईसाईयों से हम घृणा करते हैं, जिनको हम म्लेच्छ समझकर छूना बुरा समझते हैं-उनमें शिक्षित जनों की संख्या हम लोगों से अधिक है। इनमें स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकायें, छोटे, बड़े प्रायः सभी थोड़ा बहुत पढ़े लिखे हैं। याद रखिए, भविष्य में वहीं बड़ा समझा जायगा जो चरित्र और विद्याभ्यस े श्रेष्ठ होगा।”

मातृभाषा में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के पक्षधर :

मिश्र जी ज्ञानोन्नति को परमावश्यक मानते थे और प्राथमिक शिक्षा के बहुत बड़े हिमायती और वह भी मातृभाषा में दिये जाने के पक्षधर थे। उन्होंने सरस्वती जैसी लब्धप्रतिष्ठित पत्रिका में प्रकाशित अपने एक लेख में लिखा कि “जिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य को अपने शरीर की रक्षा के लिए भोजन और वस्त्र की आवश्यकता होती है उसी प्रकार ज्ञानोन्नति के लिए इस बात की भी आवश्यकता होती है कि मनुष्य अपनी भाषा में लिख पढ़ ले और हिसाब रख सके। इसी को प्रारम्भिक शिक्षा कहते हैं। उस मनुष्य का जन्म लेना वृथा है जो अपनी भाषा में लिख पढ़ नहीं सकता।” मिश्रजी केवल

वर्ग विशेष को ही नहीं बल्कि समाज के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखते हुए समाज के सभी जाति एवं वर्ग के बालक-बालिकाओं को शिक्षा दिये जाने के पक्षधर थे। उन्हीं के शब्दों में “थोड़ी बहुत शिक्षा पाने का हर स्त्री-पुरुष को, चाहे उसकी सामाजिक अवस्था कैसी ही हो, जन्म से ही स्वत्व प्राप्त है। दूसरा यह कि देश के बालक और बालिकायें जाति का धन हैं। उनकी रक्षा करना-उनके पालन-पोषण और शिक्षण का प्रबंध करना माता-पिता, शासनकर्ता और समाज का धर्म है।”

रामनारायण मिश्र छात्रों की शिक्षा के साथ ही उनके चरित्र निर्माण और उनमें देशप्रेम जागृत करने के प्रति भी सजग थे। जिस समय वे कार्य कर रहे थे वह समय स्वदेशी और देशसेवा का था। अतः उन्होंने छात्रों के आत्मनिर्माण के लिए वेडेन पावेल के संगठन के समानांतर सारे प्रांत में ‘स्काउटिंग’ को शिक्षा का अनिवार्य अंग बनवाया। वेडेन पावेल की तरह ही उस समय उनके साथी श्रीराम वाजपेयी, जिन्हें ‘हिन्दुस्तान का वेडेन पावेल’ कहा जाता है, मिश्र जी के मित्र, सहयोगी और उन्हीं के साथ कार्यरत थे। 1929 ई. में मालवीय जी के सुझाव पर उन्होंने सेवा समितियों का भी गठन किया था। जब 1930 ई. में उन्होंने अखिल एशिया शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया तो उस समय स्काउट मेले का भी आयोजन किया गया था जो एक सप्ताह तक चला था और इसमें समस्त प्रांतों के स्काउटों ने भाग लिया था।

प्रथम अखिल एशियाई शिक्षा सम्मेलन का आयोजन :

1930ई. में मिश्र जी ने शिक्षा के क्षेत्र में एक ऐसा कार्य किया जिसके फलस्वरूप उनका नाम न केवल भारत वरन् समूचे एशिया के शिक्षा के इतिहास में हमेशा के लिए स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया, जब इस वर्ष उन्होंने ‘प्रथम अखिल एशियाई शिक्षा सम्मेलन’ भारत में आयोजित किया। वे भारत की आजादी के साथ ही समूचे एशिया महाद्वीप में शिक्षा का एक व्यापक अभियान शुरू करना चाहते थे अतएव, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् और महामना मालवीय जी के साथ मिलकर उन्होंने एशियाई देशों के शिक्षाविदों और शिक्षा से सम्बद्ध अधिकारियों का पहला सम्मेलन बनारस के हिन्दू स्कूल में आयोजित किया। 1929 ई. में जब वे हिन्दू स्कूल में प्रधानाध्यापक थे, 6 माह की छुट्टी लेकर अपने परम् मित्र और बनारस के प्रसिद्ध वकील बाबू गौरीशंकर प्रसाद के साथ यूरोप की यात्रा की और वहां जेनेवा में ‘विश्व-शिक्षा-संस्था संघ’ और एलासिनो (डेनमार्क) में ‘न्यू फेलोशिप’ सम्मेलन में सम्मिलित हुए तथा अन्य देशों में भ्रमण कर स्वीट्जरलैण्ड, जर्मनी, आस्ट्रिया, फ्रांस, स्वीडन, डेनमार्क एवं विशेषतः इंग्लैण्ड की शिक्षा-पद्धतियों का गहन अध्ययन किया। भारत में शिक्षा के एशियाई सम्मेलन के आयोजन की अनुमति मिश्रजी को ‘विश्व शिक्षा संघ’ द्वारा मिली जिसका चौथा अधिवेशन जुलाई, 1929 में जेनेवा (स्वीट्जरलैण्ड) में हुआ था। इसके पूर्व इसके तीन अधिवेशन सेनफ्रांसिस्को (अमेरिका, जुलाई 1923); एडिनवर्ग (स्काटलैण्ड, जुलाई 1925) एवं टोरंटो (कनाडा, अगस्त, 1927) में हुए थे। जेनेवा में 31 जुलाई, 1929 को एशियाई देशों के प्रतिनिधियों की सभा में भारतीय शिक्षक संघ के निमंत्रण एवं मिश्र जी के अथक प्रयास से सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि 26-30 दिसंबर, 1930 को काशी में शिक्षा का एशियाई सम्मेलन आयोजित होगा।



इसी निश्चय के अनुसार 26-30 दिसंबर, 1930 ई. को मिश्रजी द्वारा बनारस के हिंदू स्कूल में शिक्षा का प्रथम अखिल एशियाई सम्मेलन आयोजित किया गया जिसका उद्घाटन काशी नरेश प्रभुनारायण सिंह द्वारा किया गया। 'भारतीय शिक्षक संघ का अधिवेशन भी इसी सम्मेलन में शामिल था। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् सभापति, राजा मोतीचंद कार्यसमिति के अध्यक्ष, पं. मदन मोहन मालवीय स्वागत समिति के अध्यक्ष और अम्बिकादत्त उपाध्याय सहायक संजोजक थे और सम्मेलन का स्वागत भाषण काशी हिंदू विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन द्वारा किया गया। महाराज कोटा, महाराज धर, महाराज टेहरी गढ़वाल, महाराजा बनारस इस सम्मेलन के संरक्षक और प्रमुख दानदाताओं में थे। चार दिवसीय इस सम्मेलन में चार हजार से अधिक प्रतिनिधियों (डेलीगेट्स) ने भाग लिया था जिसमें चीन, जापान, कोरिया, फिलिपाइंस, श्रीलंका, वर्मा सहित एशिया के अधिकांश देशों के प्रतिनिधि शामिल थे और 400 से अधिक प्रतिनिधियों की संख्या दक्षिण भरत से थी। दर्शकों की संख्या की तो कोई गणना ही नहीं थी। इस सम्मेलन में शिक्षा से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर व्यापक चर्चा तो हुई ही, साथ ही विभिन्न देशों से आये प्रतिनिधियों से विविध प्रकार के कला-कौशल का भी प्रदर्शन किया। हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के उपरांत काशी में होने वाले इस सबसे बड़े आोज को मिश्रजी ने जि परिश्रम और लगनपूर्वक सम्पन्न किया था, यह उनकी शिक्षा के प्रति समर्पण को प्रदर्शित करता है। यह सम्मेलन इतना महत्वपूर्ण था कि सम्मेलन की रिपोर्ट 837 पृष्ठों में पुस्तकाकार इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ने 1931ई0 में प्रकाशित कर सर्वसाधारण के लिए उपलब्ध करा दिया था।

डी. ए. वी. कालेज के प्रथम अवैतनिक प्रिंसिपल :

61 वर्ष की आयु में मिश्र जी ने हिंदू स्कूल से अवकाश ग्रहण किया और बनारस के दयानंद स्कूल (वर्तमान डी. ए. वी. डिग्री कालेज) को कालेज के रूप में उन्नत करने के निमित्त वहां गये। बाबू गौरीशंकर प्रसाद के साथ मिलकर उन्होंने शीघ्र ही उसे कालेज का रूप दे दिया और उसके प्रथम अवैतनिक प्रिंसिपल बने और 6 वर्ष तक उस पद पर रहे। शिक्षा के प्रति उनका समर्पण और उत्साह इसी बात से स्पष्ट होता है कि जब प्रबंध कमेटी ने उन्हें 100) रु. माहवार सवारी खर्च और मकान के लिए देने का प्रस्ताव किया तो उनका उत्तर था- 'मेरा निजी मकान है और महाविद्यालय के निकट है, इसलिए कुछ खर्च नहीं है और उन्होंने माहवार धनराशि लेने से इंकार कर दिया था।

मिश्र जी ने अनेक लेख लिखने के साथ ही चार पुस्तकें लिखीं-‘बालोपदेश’, ‘भारतीय शिष्टाचार’, ‘महादेव गोविंद रानाडे’ और ‘योरप में छह मास’। इन चारों ही पुस्तकों में छात्रों के शिष्टाचार, उनके चरित्र निर्माण एवं उन्हें ज्ञान प्रदान करने का उद्योग किया गया। मिश्र जी की पुस्तक ‘भारतीय शिष्टाचार’ इतनी प्रसिद्ध थी कि मिश्र जी के जीते जी ही उसके 13 से अधिक संस्करण निकले और उसकी लाखों प्रतियां वितरित की गई थीं।

मिश्रजी समाज सुधार, दलितोत्थान एवं शिक्षा के प्रसार के लिए स्वयं दान देते थे और दूसरों से दान लेते भी थे। मिश्रजी पूरी तरह मालवीय जी का ही अनुसरण करते थे। अतः वह ‘छोटे मालवीय’ के नाम से सर्वसाधारण में प्रसिद्ध थे। मिश्र जी की दान लेने की क्षमता अद्भुत थी। उन्होंने अंग्रेजों एवं मुसलमानों तक से भी दान प्राप्त किया था। काशी का दयानंद विद्यालय एक मुसलमान सज्जन द्वारा 1922 ई. की ग्रीष्म ऋतु में प्रदत्त भूमि पर बना है।

काशी की नागरीप्रचारिणी सभा से सम्बन्ध :

जब मिश्रजी 11वीं कक्षा के छात्र थे, तभी उन्होंने बाबू श्याम सुन्दर दास और बाबू शिवकुमार सिंह के साथ मिलकर काशी नागरीप्रचारिणी सभा की स्थापना की। सभा के सभी बड़े आयोजनों को सफल बनाने में मिश्र जी का प्रमुख योगदान था। हिंदी शब्दसागर, वैज्ञानिक शब्दावली और विशेषकर ‘व्याख्यानमाला’ की सफलता का अधिकांश श्रेय मिश्र जी को ही था। साधारण शिक्षा के साथ ही उन्होंने वैज्ञानिक शिक्षा को प्रबल प्रोत्साहन दिया और हिंदी में वैज्ञानिक लेखों एवं मौलिक ग्रंथों के लेखन को प्रोत्साहन देने हेतु उन्होंने ‘ग्रीब्ज पदक’ (रजत) एवं डॉ. छन्नूलाल मेमोरियल गोल्ड मेडल’ (स्वर्ण) नामक दो पदक नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा देने की व्यवस्था की। नागरीप्रचारिणी सभा के माध्यम से उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य किया वह इतिहास प्रसिद्ध ही हैं।

मिश्र जी भारत के आमजन तक उन्हीं की भाषा में वैज्ञानिक शिक्षा पहुँचाने के पक्षधर थे ताकि आमजन लाभप्रद वैज्ञानिक एवं गूढ़ बातों को समझ सके। इस संदर्भ में यूरोप का ‘युनिवर्सिटी एक्सटेंशन लेक्चर्स’ का उदाहरण उनके सामने था जो यूरोपीय समाज में शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी भूमिका निभा रहा था। मिश्रजी इस संदर्भ में पहले व्यवहारिक हुए और काशी नागरी प्रचारिणी सभा के माध्यम से सं. 1961 में ‘सुबोध व्याख्यानमाला’ का आयोजन आरंभ किया। इसके लिए सभा ने रेवरेंड ई. ग्रीब्ज, राधाकृष्णदास, डॉ. छन्नूलाल, श्याम सुन्दर दास और पं. रामनारायण मिश्र (मंत्री) की एक उपसमिति भी बना दी। इस समिति के मिश्रजी ही सब कर्तार्थी थे। इस कार्य में सभा को आशातीत सफलता प्राप्त हुई। व्याख्यान सुनने के लिए सभा में इतनी भीड़ होती थी कि हाल तो क्या बरामदों में भी जगह नहीं बचती थी। व्यवहार में अत्यधिक सफलता प्राप्त करने के बाद मिश्रजी ने भारतवासियों के सामने यह बात रखी कि इस माध्यम से भी शिक्षा का प्रसार हो सकता है जो कि काफी उपयोगी है। उन्होंने सरस्वती पत्रिका के भाग-13, संख्या-2, 1912ई. में लिखा कि “पाश्चात्य देशों में उच्च शिक्षा पाये हुए पुरुष अपना कर्तव्य समझते हैं कि मजदूरों, गांव के लोगों और सर्वसाधारण को विज्ञानशास्त्र के गूढ़ तत्वों को सरल करके समझावें। इसका प्रबंध वहां विश्वविद्यालय करते हैं। बड़े-बड़े विद्वान मैजिक लालटेन की सहायता से अपने व्याख्यानो को रोचक बनाकर सर्वसाधारण को बड़ी-बड़ी गूढ़ बातें

देशभाषा में समझाते हैं। ऐसे व्याख्यानों के विषय कोयला, खरिया, ग्रहण, हाथ, आँख इत्यादि होते हैं। इन व्याख्यानों का फल देश पर बड़ा ही अद्भुत होता है।”

राष्ट्रवाद के उदय का मूल शिक्षा है :

मिश्रजी शिक्षा के महत्व से भलीभाँति परिचित थे और उन्होंने भारतवासियों के सामने यह बात बहुत ही स्पष्ट शब्दों में रखी कि सब प्रकार की जागृति और उन्नति, यहां तक कि राष्ट्रवाद के अभ्युदय का मूल भी शिक्षा ही है और शिक्षा ही विश्व के अन्य देशों के समान भारत में भी जागृति लाने में प्रमुख भूमिका निभा सकती है। 20वीं सदी के आरंभ में ही उन्होंने सरस्वती पत्रिका में लिखा “वर्तमान काल की शिक्षा में एक और विशेषता है। आजकल स्कूलों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों में जातीयता के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। वे अपने देश के सुधार की चेष्टा करते हैं। इसके कई कारण हैं - इतिहास, भूगोल और विज्ञान का पढ़ना उनके विचारों के क्षितिज को विस्तृत कर देता है; अन्वेषण करने की शक्ति उनमें उत्पन्न कर देता है।..... शिक्षा की इस विलक्षणता का प्रभाव समाज, राजनीति, उद्योग धन्धा सब पर पड़ता है। और, यह इसी शिक्षा का फल है कि चीन अफीम की पिनिक से उठ रहा है; जापान संसार के अग्रगण्य देशों में माना जाता है; और भारत में भी जागृति के लक्षण दिखाई देते हैं।”

पं. रामनारायण मिश्र के कार्यों के अवलोकन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वे आजीवन शिक्षा से जुड़े रहे और जहां भी गये शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रतिमान स्थापित किया। बनारस में शिक्षा एवं शिक्षण संस्थाओं के वे एक प्रकार से स्थापनकर्ता थे। हरिश्चंद्र स्कूल एवं हिन्दू स्कूल का तो उन्होंने एक प्रकार से कायाकल्प ही कर दिया। शिक्षा के कालापानी ‘देवरिया’ में भी उन्होंने वह कर दिखाया जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी सराहनीय कार्य किया। वृद्धावस्था में दयानंद महाविद्यालय की स्थापना करना शिक्षा के प्रति उनके समर्पण को प्रदर्शित करता है। शिक्षा का प्रथम अखिल एशियाई सम्मेलन आयोजित कर उन्होंने शिक्षा के संबंध में अपनी विराट कल्पना का उद्दीपन किया। न तो उससे पूर्व और न ही पश्चात् यह सम्मेलन कभी आयोजित हो सका और जो एकमात्र हुआ भी वह मिश्रजी के अथक प्रयास के कारण हुआ। वे इतने बड़े शिक्षाशास्त्री थे कि भारत की अंग्रेजी सरकार आई. सी. एस. विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए उन्हें इंग्लैण्ड भेजना चाहती थी परन्तु उन्होंने जाने से इंकार कर दिया था। मिश्रजी लालबहादुर शास्त्री, अलगूराय शास्त्री, शांतिप्रिय द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी सदृश कितने ही लोगों के निर्माता थे। शिक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान का मूल्यांकन करते हुए महान शिक्षाशास्त्री सीताराम चतुर्वेदी ने उन्हें ‘छात्रों का निर्माता अभिभावक’ की संज्ञा दी और लिखा कि “वे मूलतः शिक्षाशास्त्री, शिक्षक और शिक्षाचार्य थे। वे छात्रों के चरित्र निर्माण के संबंध में बहुत सजग और उत्सुक थे।..... वे किसी विद्यालय को केवल पढ़कर परीक्षा उत्तीर्ण करने मात्र का केन्द्र नहीं मानते थे। वे चाहते थे कि विद्यालय से निकला हुआ छात्र शरीर से पुष्ट, मेधा से विवेकशील और भाव से लोकसेवक तथा देशभक्त हो।” शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के कारण ही लोगों ने मिश्रजी को “छोटे मालवीय जी” उपनाम प्रदान कर रखा था। आज के इस वैश्वीकरण के युग में भारत को पं० रामनारायण मिश्र जैसे शिक्षाशास्त्रियों की ही आवश्यकता है जो छात्रों में संयम, शील, समर्पण और देशप्रेम की भावना जागृत कर सकें।

5

The Two Esoteric Legends Of The VĀLMĪKI RĀMĀYAṆA That Unravel Earth's Evolution By Major Impact Events



ORIGIN OF METALS AND MINERALS

Satya Narain, Prof. Eng. Toronto, Canada

Dr. Ratnakar Narale, Toronto, Canada

Abstract

Ancient science related to the earth's evolution is found to be embedded in the texts of two esoteric legends namely "The Union of Śiva with Umā" and "The Birth of Kārtikeya" narrated in the Bālākāṇḍa of the Vālmīki Rāmāyaṇa (VR). The decoding of the two esoteric legends unravel the two specific major impact events that occurred in the history of earth's evolution. The two major impact events on the earth's surface were preceded by specific super-cosmic interactions between celestial entities in outer space and followed by geothermal eruptions on earth.

The first major impact event occurred by bombardment of humongous quantities of the meteorites (*tejasā*) on an early earth when it had cooled and developed its solid crust. The super cosmic interactions between the two giant celestial entities (symbolized by Śiva and Umā) in deep outer space induced humongous quantities of meteorites to fall on earth. The massive impacts of showered meteorites triggered eruptions of giant molten magma waves all over the earth's surface and carried all the showered meteorites inside the earth. This major impact event has an amazing congruence with Late Heavy Bombardment (LHB) that had occurred about 3.8 billion years ago. The text of the legend has significant geological clues, earth's characteristics and time-related indications which are consistent with the 3.8 billion years ago time line of the LHB which correspond to the Eoarchean Era of the Archean Eon of earth's history.

The second major impact event occurred by the hit of a giant comet (symbolized by the birth of Kārtikeya) on earth's surface when it had just started to sustain the life in the form of early types of land plants. This stage of earth's evolution is inferred to correspond to Devonian period of Phanerozoic Eon, 416 to 359.2 million years ago. The cosmic interaction between extremely strong energy bursts emanating from Sun (symbolized by *agni*) and Kuiper belt (symbolized by *ākāśagangā*) caused a major disturbance in the movements of the comets bodies within the Kuiper belt and ejected one giant comet (symbolized by the embryo of Kārtikeya) from its orbit and hit the earth at the base of Mount Kailash with a tremendous force. The severe impact of comet hit caused volcanic eruptions which spewed the material from inside the earth to its surface.

The two major impact events have significantly contributed to earth's evolution over a vast span of time. The legends unravel the ancient science which explains how the metals and minerals, Mount Kailāsa, Lake Mān-sarovar originated and the life evolved on earth.

The legends theorize that Metals and minerals have originated in the earth's crust in three stages. In the first stage, huge quantities of metals-rich meteorites were delivered to early earth. In the second stage, all the showered metal-rich meteorites entered inside the earth by gigantic geothermal eruptions of magma waves. In the third stage, metals were ejected from inside the earth to its surface by volcanic eruptions just after the comet strike. After reaching the earth's surface, most of the metals reacted with gases in the atmosphere and got converted into their minerals form. The geothermal origin theory of metals origin as revealed by the legends is in congruence with modern science.

After the first major impact event, the earth's surface was re-formed and originated its first high mountain called *śvetaparvatam* due to geothermal eruptions. It is inferred that *śveta parvatam* and Mount Kailāsa refers to the first high mountain formed on early earth. In the second major impact, a giant comet struck the earth and formed a huge crater at the base of Mount Kailāsa. It is inferred that this huge crater was filled with water and formed a lake called Mān-sarovar.

The legends present a new geological point of view that the Mount Kailāsa and Lake Mānsarovar had formed on earth's surface much before the rise of the Himalayan mountain range. The shower of the huge quantities of meteorites delivered life sustaining substances from outer space and kick-started life on the early earth over a span of time. The origin of life on earth as revealed by legends is in congruence with modern view according to which it is theorized that Late Heavy Bombardment (LHB) delivered the life sustaining substances (such as carbon, nitrogen, and the amino acid) to the earth from the outer space.

The above two legends of Vālmīki Rāmāyaṇa deserves to be recognized as the treasurer of the most ancient planetary and earth sciences in the world.

Key Words: Vālmīki Rāmāyaṇa, Early Earth, Impact event, Meteorite, Comet, Volcanic Eruption

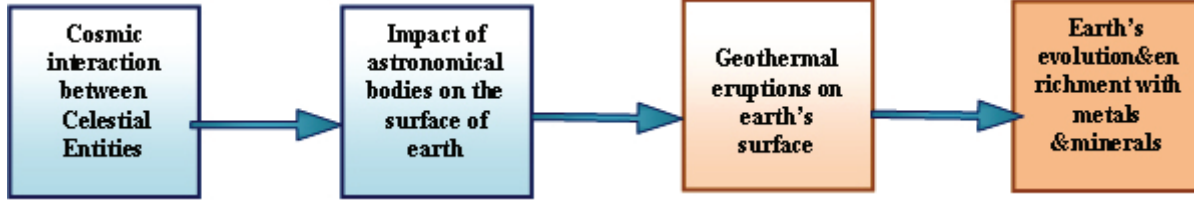
Abbreviations: VR-Vālmīki Rāmāyaṇa, RE, LHB - Late Heavy Bombardment

INTRODUCTION

Vālmīki Rāmāyaṇa (VR) describes inspiring life story of Rāma. It is the most ancient epic in Sanskrit language. It has 24000 *verses* (Texts) arranged in 7 *kāṇḍas* (Books). The First Book of the VR is *Balākāṇḍa* which narrates the two esoteric legends namely “The Union of Śiva with Umā in the Chapter 36¹. (hereafter called the Legend L-1) and “The Birth of Kārtikeya” in the Chapter 37¹ (hereafter called the Legend L-2). The Legend L-1 describes the conjugal union between Lord Śiva and Devi Umā after their marriage. The Legend L-2 is a narration of surrogating birth of a new divinity Kārtikey by intimate interactions between Fire-God (*Agni*) and Sky-Ganga (*ākāśa-gangā*). Both the legends are allegorical multi-layered poetic text. These legends on the surface appear to be the acts and relationships between the divinities in their personalized form. The deciphering the symbolism of divinities and inner meanings of a few key Sanskrit words used in the allegorical texts of the Legends L-1 and L-2 unravel ancient science concerning evolution of earth over a vast span of time.

LEGENDS UNRAVEL TWO MAJOR IMPACT EVENTS

The texts of the Legends L-1 and L-2 have been decoded by interpreting the contextual meanings of the key Sanskrit words and the symbolism of the divinities.^{2, 4}The Legends L-1 and L-2 are found to be masterly allegorical depictions of the massive impact events of asteroidal bodies upon the earth, logically linked with their cause-and-effect relationships, as shown below:



IMPACT BY BOMBARDMENT OF METEORITES

The decoding of Legend L-1² indicates occurrence of an event of massive bombardment of meteorites (smaller asteroids) on the early earth when its surface had cooled and developed its solid crust. As a consequence, the entire earth's surface was deluged with humongous quantities of meteorites (*tejasā*) showered from outer space:

तेजसापृथिवीयेनव्याप्तसगिरिकानना|1.36.16
tejasāpṛthivīyēnavyāptāsagirikānanā

The bombardment of meteorites on the early earth's surface occurred due to two consecutive super cosmic interactions between the two giant celestial entities (symbolized by *Śiva* and *Umā*). In the first cosmic interaction, the two super giant celestial entities had come close to each other by their natural forces of attraction and formed a binary union in the deep cosmos which lasted for 100 celestial years (equivalent to 36,000 human years¹). This binary union brought the cosmos perilously close to destruction. Then, the second cosmic interaction occurred in which the binary union ceased and the two celestial entities repositioned and migrated away from each other. The break-up of the binary union released super-colossal

energy (*tejo hi anuttamam* in the text of 1.36.14) into the cosmos, which acted upon all the celestial entities and bodies in multiple ways. As a consequence, natural force fields got re-configured and dynamically affected the cosmos in multiple ways and carried out the greatest cleaning operation in outer space when trillions of meteorites (*tejasā*) were induced to fall on the planet earth.

The impact by humongous quantity of meteorites on the earth was so severe that it accentuated thermal convection currents inside the earth and caused eruption of giant waves of molten magma all over the earth's surface. The erupted giant molten magma waves churned, stirred and finally assimilated all of the showered meteorites into the earth's mantle. In this manner, all the showered meteorites became an integral part of the earth mass.

अविशत्वम्महातेजोरौद्रम्वायुसमन्वितः|1.36.17

āvisatvammahātejoraudramvāyusamanvitaḥ

After the massive impact and gigantic geothermal upheavals and eruptions; the entire earth's surface was re-formed. The earth was enriched with asteroidal matter which contained variety of substances including the heavier and precious metals and life sustaining substances.

The decodification of the Legend L-1² reveals impact event which has amazing congruence with Late Heavy Bombardment (LHB)³. According to the LHB theory huge amounts of meteorites had showered on the early earth about 3.8 billion years ago which correspond to the Eoarchean Era of Archean Eon of the history of earth. Similar to the LHB theory, the Legend L-1 also unravels gigantic geothermal eruptions as an effect of the impact event. The text of the Legend L-1, has significant geological clues, earth's characteristics and time-related indications which are consistent with the 3.8 billion years ago time line of the LHB.

IMPACT BY GIANT COMET STRIKE

The decoding of the text of the Legend L-2⁴ unravels strike of a giant comet (symbolized by embryo of Kārtikey) on the earth's surface when it had started to sustain life in the form of early

types of plants and shrubs. The timeline of this impact event is inferred to correspond to the later part of Devonian period of Phanerozoic Eon say about 385-360million years ago. The severe impact of the giant comet occurred on the earth's surface due to super cosmic interaction between extremely strong energy bursts emanating from the Sun (symbolized by *agni*) and Kuiper belt (symbolized by *ākāśa-gangā*). As a consequence, movement of the comets within a band of the Kuiper belt got disturbed and one giant comet got ejected from its elliptical orbital path and struck to earth.

The giant comet impact on the earth was an extremely high-energy event. The impact was so powerful that it triggered geothermal eruptions and ejected molten materials from the earth's inside to the earth's surface.

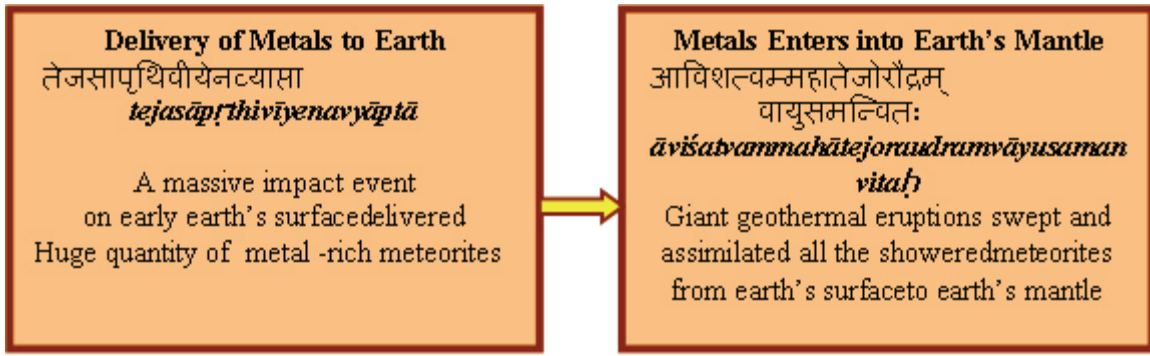
EARTH'S EVOLUTION

The major impact events revealed by the Legends L-1 and L-2 played significant roles in shaping the evolution of earth. The legends specifically unravel the origin of the Metals, Mount Kailāsa, Lake Mān-sarova and Life on earth in a scientific manner.

ORIGIN OF METALS

How metals have originated in earth's crust remains an important subject of research of modern science. The ancient science embedded in the two legends suggests a theory which explains in scientific manner how the metals and minerals had originated in the earth's crust. The Legend L-1 reveals that the early earth was enriched with metals by two processes linked with cause-effect relationship. In the first process, massive impact event delivered huge quantities of metal-rich meteorites to the earth's surface. In the second process, giant geothermal eruption of molten magma waves occurred on the earth's surface which swept and assimilated all the showered metal-rich meteorites into the early earth's mantle

The two processes of earth's enrichment with metals can be summarized as given below:



The Legend L-2 reveals the giant comet strike triggered volcanic eruptions which ejected the metals from earth's interior to its surface. The texts of 1.37.18, 1.37.19 and 1.37.20 precisely describe the geothermal origin of metals as follows:

यत्अस्यानिर्गतस्तस्मात्तप्तजंबूनदप्रभम् ||1.37.18

yatasyānirgatamtasmāttaptajāmbūnadaprabham

कांचनमधरणीम्प्राप्तमिहिरण्यमअतुलप्रभम्|

kāṁcanamdharaṇīmprāptamhiraṇyamatulaprabham

ताम्रम्काष्णयिसम्वैवतैक्षण्यात्एवअभिजायत|| 1.37.19

tāmramkāṣṇāyisamcaivataikṣṇyātevaabhijāyata

मलमस्तस्यअभवत्त्रपुसीसकम्एवच|

malamtasyaabhavattatrapusīsakameva ca

तत्एतत्धरणीम्प्राप्यनानाधातुःअवर्धत ||1.37.20

tatetatdharāṇīmprāpyanānādhātuḥavardhata

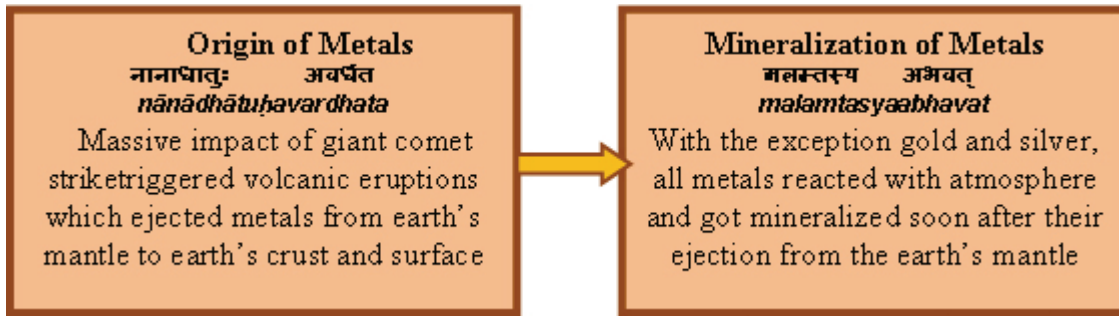
The meaning of the above text is as follows:

That molten (*tapta*), golden (*jāmbūnada*) and glittering (*prabham*) material erupted and reached the earth's surface (*dharaṇīmprāptam*) and from that gold (*kāṁcanam*) and silver (*hiraṇyam*) had emerged. Also due to that fiery process (*taikṣṇyāt*), copper (*tāmram*), iron (*kāṣṇāyasam*), tin (*trapu*) and lead (*sīsakam*) emerged and became oxidized (*malam*), In this way, many other elements (*nānādhāturavardhata*) arrived on the earth's surface.

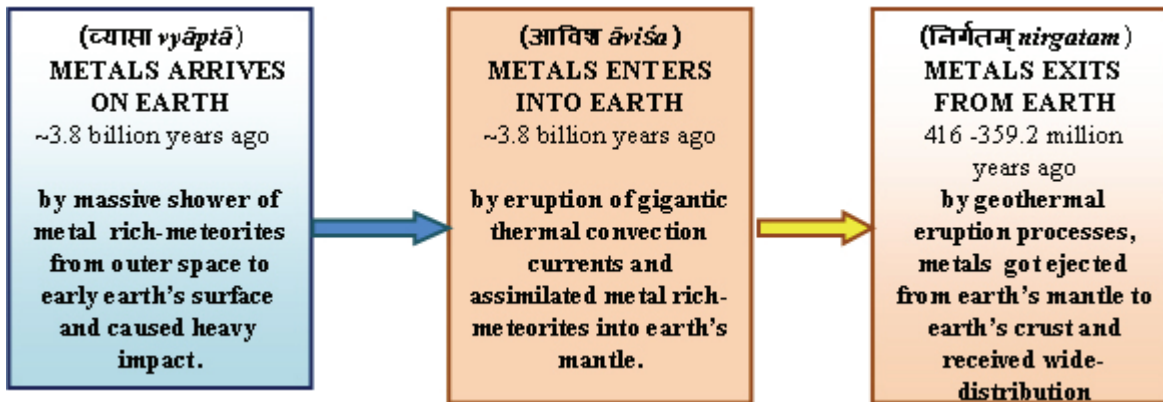
The above text has a key phrase '*taptajāmbūnadaprabham*' which precisely refers to the characteristics of the material that erupted from the earth's interior. It was molten (*tapta*),

golden (*jāmbūnada*), and highly glittering (*prabham*). The molten material got ejected from the interior of the earth by a process called “*taikṣṇyātt*”, which refers to a fiery geothermal process such as eruption of volcanoes. It is specifically stated that molten material reached the earth’s surface (*dharaṇīmprāptam*)

Further, the text precisely states that erupted molten material contained many metals (*nānādhātuḥavardhata*). Six antique metals are identified by their specific names, i.e. gold, silver, copper, iron tin and lead. Different types of metals initially came out from the earth’s interior in their elemental form. Metals namely gold, and silver, could retain their elemental form. Other metals such as copper, iron, tin and lead and many other metals could not remain stable in their elemental form. These metals instantly reacted with earth’s atmosphere and got converted into their respective mineral (compound) forms (*malamtasyaabhavat*). The origin of metals and their mineralization is shown below:



The Legends L-1 and L-2 together theorize how the metals originated on the earth’s surface by cosmic and geothermal processes as summarized below:



The VR deserve to be recognized containing as the most ancient textual evidence (verses 1.37.18, 1.37.19 and 1.37.20) in the world that scientifically describes the geothermal origin of metals in the earth's crust.

ORIGIN OF MOUNTKAILĀSA

Mount Kailāsa is an important geological feature on earth. It rises to a height of 6,638 meters (21,778 ft) from the highest point of Tibetan Plateau. Its grandeur lies not in its height but in its distinct pyramidal shape and its solitary location deep inside and behind the six mighty mountain ranges of the Himalayas. Its location and summit are atypical of the Himalayan mountain range. The peak of Mount Kailāsa has almost perfect pyramid shape in contrast to Himalaya's peaks which are formed from folding action of the plates. Mount Kailāsa is recognized as the most significant geological anomaly, but has not been explained by modern science.

The Legends L-1 and L-2 sheds light how and when the Mount Kailāsa could have formed on the earth's surface. The text 1.37.10 directly refers to Mount Kailāsa as follows:

तेगत्वापरमरामकैलासंधातुमण्डितम्/1.37.10
tegatvāparamamrāmakailāsamdhātumaṇḍitam

The text 1.37.6 contextually refers to Mount Kailāsa by the different name *Haimavate* as follows:

इहहैमवतेपादेगर्भोऽयंसंनिवेश्यताम्/1.37.16
ihapārsvegarbhoayamsaṁniveśyatām

Mount Kailāsa is described in the text 1.37.10 with a superlative adjective '*param*', as an assembly point for the divinities and its summit possessing metallic sheen (*dhātu maṇḍitam*). This implies Mount Kailāsa was the most incredible and indescribable prominent feature on earth. The text 1.37.16 reveals that the giant comet (symbolized by Kārtikeya) struck earth at the base of a Mount *Haimavate*. This implies *Haimavate* and *Kailāsa* contextually refer to the

same mountain with its two attributes. The *Haimavate* (derived from root word *haim* which means gold) refers to a mountain whose peak shines like gold. The *Kailāsa* means crystal and it refers to the same mountain whose peak is like a crystal (pyramidal).

The Legend L-2 specifically confirms that Mount Kailāsa existed on earth before time of the second impact event by the strike of giant comet on earth.

The Legend L-1 refers to a high mountain which was formed at the end of fiery geothermal event after the huge impact of the meteorites on early earth:

तद्अग्निनापुनर्व्याप्तिसंजातम्ध्वेतपर्वतम्|1.36.18

tadagnināpunarvyāptamsamjātam śveta parvatam

The high mountain in the above text is called *śveta parvatam*. The meaning of the word *śveta* is a crystal. The word *kailāsa* also means crystal. It is inferred that *śvetaparvatam* is another name of the Mount Kailāsa. The words such as *śvetaparvatam* in the Legend L-1 and *kailāsa* and *haimavate* in the Legend L-2 are used for the same high mountain and describe the grandeur of its summit which has unique crystal-like (pyramid) shape and metallic shine like gold. It is inferred that the Mount Kailāsa was the first high mountain formed by the occurrence of gigantic geothermal eruptions on early earth without any plate tectonics about 3.8 billion year ago.

Himalaya is known to be the youngest mountain ranges on the planet earth. It was lifted in a series of stages 30 to 50 million years ago by the collision between the Indian and Eurasian continental plates along their convergent boundary. Geology of Mount Kailāsa is considered integral part of the geology of Himalaya. However, the Legends L-1 and L-2 presents a different view that Mount Kailāsa is not geologically integral part of the Himalayan ranges.

ORIGIN OF LAKE MĀN-SAROVAR

Lake Mān-sarovar situated at a height of 4,590 meters. It is located 20km south east of Mount Kailāsa. It is the highest fresh-water lakes in the world. It has relatively round shape with a

circumference of 88 kilometres and a depth of 90 meters. It is the source of major rivers such as Sutluj, Brahmaputra, Sindhu and the Ghaghara. Modern Science has not done adequate research on the origin of the Lake Mān-sarovar.

The location of the Lake Mān-sarovar at the base of the Mount Kailāsa is precisely described in the texts of 1.24.8 and 1.24.9 of the VR as follows:

कैलासपर्वतेराममनसानिर्मितम्परम्|| 1.24.8

kailāsaparvaterāmamanasānirmitamparam

ब्रह्मणानरशार्दूलतेनइदम्मानसम्सरः|1.24.9

brahmaṇānaraśārdūlatenaiddammānasamsaraḥ

Lake Mān-sarovar means 'Lake of mind.' It was first created in the mind of Brahmā. Thus, creation of Lake Mān-sarovar is linked to a specific cosmic interaction event. The Legend L-2 refers to Brahmā's cosmic plan for birth of Kārtikey. It is inferred that this cosmic plan also included the creation of Lake Mānsarovar on earth. The text 1.37.16 of the Legend-2 confirms that comet strike occurred at the base of Mount Kailāsa. It is certain that comet strike must have created a huge crater (bowl-shaped cavity) at the base of Mount Kailāsa. It is postulated that Lake Mānsarovar had formed within a crater at the spot where giant comet strike occurred about 385-360 million years ago which is a later part of Devonian period of Phanerozoic Eon. This postulation is supported by the fact that the Lake Mān-sarovar has a round shape which is archetypal to other known big craters formed by the comet strike on the surface of earth.

The Legends L-1 and L-2 present a definite geological point of view that the Mount Kailāsa and Mān-sarovar had formed on the earth's surface long before the rise of the Himalayan mountain range. The validity of the clues about the cosmic origin of the Mount Kailāsa and Lake Mān-sarovar deserves a deeper study by using modern tools and techniques by earth and planetary scientists.

KICK START AND EVOLUTION OF LIFE

How life started on earth is one of the deepest mysteries of modern science. It is amazing that whole text of the Legend L-1 despite being allegorical confirms total absence of life on the planet earth at the time of the first massive impact event. However, the text 1.36.18 of the Legend L-1 specifically refers to the life that would evolve to the stage of early land plants over a span of time as a consequence of the massive impact and geothermal events as follows:

दिव्यंशरवणंचैवपावकादित्यसंनिभम्॥ 1.36.18

divyaṃśaravaṇaṃcaivapāvākādityasaṃnibham

The above text implies that the massive shower of the meteorites delivered life sustaining substances to earth from outer space and kick-started life on the early earth. This impact event added a huge mass and enriched earth with right ingredients for initiating gradual geological, chemical and biological changes for evolving life over a span of geological time. This concept is identical to modern view according to which it is theorized that LHB delivered the life sustaining substances (such as carbon, nitrogen, and the amino acid) to earth from outer space.

After the kick start of life on early earth, the process of life evolution continued over a span of time. The text 1.37.2 of the Legend L-2 confirms the life had evolved up to the stage of early land plants at the time of the strike of giant comet on earth:

तृणवृक्षलतागुल्ममूर्सर्वम्भवतिकांचनम् ॥ 1.37.22

tṛṇavṛkṣalatāgulmamsarvambhavatikāṃcanam

The origin of life is an unsolved puzzle of modern science. However, modern science confirms that first life had evolved about 3.5 billion years ago. The Legends L-1 and L-2 support the concept of life evolving over a large span time and after the LHB. The massive impacts and geothermal processes have provided the environments needed to transform life sustaining compounds into living organisms and may have provided a suitable habitat for that life to evolve.

The root-cause for kick starting life on earth was the cosmic union between the two giant celestial entities (symbolized by *Śiva* and *Umā*). *Śiva* is immanent superpower (*tattva*) or fundamental force (*mahashakti*) in the cosmos. *Śiva* is the source and controller of all the natural forces. *Śiva* and *Umā* manifested and interacted in their super celestial entities form for the protection and evolution of the cosmos. It seems that the occurrence of this super cosmic union is recognised in India since ancient times by the worship of *Śiva* in lingam form. In Sanskrit the word “lingam” means mark or a symbol, that which leads to infer something. It is inferred *Śiva* Lingam is a symbol of manifestation of *Śiva* and *Umā* in the form of two super celestial entities and their union in the deep cosmos for kick starting life on earth. Thus worship of *Śiva* in the lingam form is a celebration of beginning of the life on planet earth.

The essence of the Legend L-1 is also conveyed by the two hymns of ancient Sanskrit text of “*Linga-shtakam*” as follows:

दिनकरकोटिप्रभाकरलिंगं
dinakarakoṭiprabhākaraliṅgam
सर्वसमुद्भवकारणलिंगं
srvasamudbhavakāraṇaliṅgam

The above hymns describe the manifestation and splendidence of *Śiva* in the form of a super celestial entity like billion of suns. It is *Śiva* who is the cause of all creations.

A huge statue of Nataraja, the symbolic depiction of Lord *Śiva* who performs “cosmic dance” is installed in CERN (European Organization for Nuclear Research) in Geneva. For the modern physicists, *Siva*’s dance is interpreted as the dance of subatomic matter, a pulsating process of creation and destruction, without end. The world should recognise *Śiva*-lingam as a scientific symbol of a super cosmic interaction which fixed the clock of the cosmos and kick started life on early earth.

SUMMARY AND CONCLUSIONS

Decoding of the texts of the legends “The Union of Śiva with Umā” and “The Birth of Kārtikeya unravels the two major impact events logically linked with their cause-and-effect relationships. The first major impact event occurred by bombardment of humongous quantities of the meteorites (*tejasā*) from outer space on an early earth when it had cooled and developed its solid crust. The first impact event has amazing congruence with Late Heavy Bombardment (LHB).

The second major impact event occurred by the strike of a giant comet (symbolized by the birth of Kārtikeya) on earth’s surface when it had just started to sustain life in the form of early types of land plants.

These two major impact events have played significant role in shaping the evolution of earth and provides the clues with regards to the origins of metals, Mount Kailāsa, Lake Mān-sarovar and kick start of life on the earth’s surface.

The legends theorize geothermal origin of metals and minerals. The first massive impact event delivered huge quantities of metal-rich meteorites from outer space to the earth’s surface. Then, all the showered metal-rich meteorites entered inside earth by geothermal eruptions of the molten magma waves. Metals remained stored inside earth and inaccessible on earth’s surface for long time until the occurrence of the second major impact event which ejected the metals by volcanic eruptions. The geothermal origin of metals and minerals has congruence with modern science.

Modern science has not done adequate research about the origin of Mount Kailāsa and Lake Mān-sarovar. The Legend L-1 refers to the first mountain called *śveta parvatam* formed on early earth by the occurrence of gigantic geothermal eruptions without any plate tectonics

about 3.8 billion year ago. The two key words *śveta* and *kailāsa* have the same meaning i.e. crystal. It is inferred that the Mount Kailāsa had originated as an effect of on early earth about 3.8 billion years ago. The Legend L-2 refers to the strike of agiant comet at the base of Mount Kailāsa about 385-360 million years ago. It is inferred that the Lake Mān-sarovar had formed within the crater created by the impact of comet strike at the base of the pre-existing Mount Kailāsa. Both the legends present a definite geological point of view that Mount Kailāsa and Lake Mān-sarovar had formed on the surface of earth much before the rise of Himalayan mountain ranges.

The Legend-1 indicates total absence of life and delivery of life sustaining substances by shower of the huge quantities of meteorites. It is inferred that after enrichment of earth with life sustaining substances complex chemical and biological processes got initiated and kick started life on earth over a long span of time. The life evolved to a stage of early grasses and plant at the time of the comet impact event. The concept of kick start of life after the first impact event is in line with modern understanding that the first life on earth started after the LHB.

The texts of the two legends have been found to be ingrained with significant scientific clues, ideas and deep insights which are considered relevant to the current research on earth's evolution. This legend has potential to open more vistas and doors for inter-disciplinary study and research.

REFERENCES

1. Rao Hanumānta Desiraju and Murthy K.M.K *Valmiki Rāmāyana*, (2008)
<https://www.valmikirāmayan.net>
2. Narain Satya and Narale Ratnakar, IJSR 2016; 2(2): 59-68
3. Late Heavy Bombardment. https://en.wikipedia.org/wiki/Late_Heavy_Bombardment.
4. Narain Satya and Narale Ratnakar, IJSR 2016; 2(4): 12-17

6

भारतीय स्वतन्त्रता का सच

प्रो. डॉ. अरुणा सिन्हा



Prof Emeritus, Banaras Hindu University, Varanasi

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एक लंबे समय से न केवल इतिहासकारों वरन पत्रकारों, सामान्य जनता, राजनीतिज्ञों और यहाँ तक कि विदेशियों के लिए भी एक कौतूहल का विषय बना हुआ है। यद्यपि 1947 में देश को ब्रिटिश शासन से आज़ादी मिली थी और लगभग 70 वर्षों के इस लंबे अंतराल में इस विषय पर न जाने क्या क्या लिखा गया है। शायद ही कोई ऐसा विषय अथवा व्यक्ति बचा होगा जिस पर देश के अंदर व बाहर के लेखकों ने अपनी कलम न चलायी हो। और इस बीच बहुत सी पठनीय सामाग्री भी प्रकाशित हुई, जो उन दस्तावेज़ों पर आधारित है, जिन्हें देख पाने या जान पाने की कल्पना शायद आज से 50 साल पहले लोगों ने की भी नहीं थी। किन्तु विषय इतना अधिक रोचक है, कि आज भी उसे पढ़ने व जानने में उतना ही आनंद आता है, जितना शायद उन दिनों आता होगा। और पढ़ते पढ़ते कई बार तो रोंगटे भी खड़े हो जाते हैं क्योंकि यह कहानी आप-बीती सी ही लगती है। अतः विषय सिर्फ अकैडमिक रुचि का ही नहीं है बल्कि उसकी प्रासंगिकता बहुत व्यापक व समवेदनाओं से भारी हुई है।

1942 में हुआ 'भारत छोड़ो आंदोलन' भी इसी स्वतंत्रता की सिलसिलेवार कहानी की एक महत्वपूर्ण कड़ी है, जिसे आज भी "करो या मरो" के गांधीजी द्वारा दिये गए मंत्र के जरिये लोग भूल नहीं पाये हैं। जो अबतक पढ़ा, व ज़्यादातर लोगों से सुना, उससे अधिकांश लोग यह मानते हैं कि स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी गई गांधीजी व इंडियन नेशनल काँग्रेस के भारतीय राजनीति में सक्रियता से आने के पश्चात। उसके पहले तो व उसके बाद भी जो अन्य घटनाएँ सुनने को मिलती हैं, वे तो एक असंगठित, उत्तेजनापूर्ण, स्वार्थपरक तबकों के द्वारा छुटपुट स्तर पर की जा रही लड़ाई बन कर ही रह गई थी। और जिसे ब्रिटिश सरकार ने बिना किसी मेहनत के अपनी सरकारी ताकत से कुछ ही समय में कुचल कर रख दिया। उनका प्रश्न यह भी रहता है कि उन छुटपुट कोशिशों से देश को हासिल क्या हुआ? जबाब मिलता है – सिर्फ कुछ लोगों को फांसी व बड़े पैमाने पर सरकारी दमन। किन्तु इसके विपरीत जब गांधी जी व उनके साथ काँग्रेस की गतिविधियों के संदर्भ में जब लोगो को पुस्तकों के माध्यम से पढ़ने को मिलता है तो लगता है जैसे ब्रिटिश सरकार को असली चुनौती मिली थी इसी राष्ट्रीय संगठन से जिसे इतिहास में हम इंडियन नेशनल काँग्रेस के नाम से जानते हैं – क्योंकि इस संदर्भ में सरकारी दस्तावेज़, व गैर सरकारी प्रकाशन सामाग्री इतनी अधिक है, कि लगता है भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का असली स्वर्णिम पृष्ठ शायद यही है। अपने प्रस्तुत लेख में, मैंने हमारी अतीत की जो समझ है, उसमें व्याप्त कमजोरी एवं हमारे दिमाख पर राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में हावी कुछ खास पक्षों की व्यापक संदर्भों में विवेचना करने का प्रयास किया है, जिससे शायद यह स्पष्ट हो सके कि स्वतन्त्रता देश को 1947 में कैसे मिली?

भारत छोड़ो आंदोलन को लेकर अक्सर यह विवाद हो जाता है कि क्या यह कांग्रेस की कर्मठता का परिणाम था, जो उसने गांधीजी के नेत्रत्व में 1920-21 के बाद के वर्षों में देश के स्वतन्त्रता संग्राम को तेज़ करने के लिए दिखाई थी, और अपने रचनात्मक व अहिंसात्मक आंदोलन के रवैए से लगभग हर 10 वर्ष के अंतराल पर देश में ऐसे ऐतिहासिक आंदोलनों को खड़ा करती अथवा छेड़ती रही जिसने ब्रिटिश सरकार को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि अब भारत में उनका शासन करना लगभग असंभव है, अतः उसे यहाँ से वापस चले जाना चाहिए और शासन की बागडोर भारतवासियों को सौंप देनी चाहिए।

निःसंदेह 1942 की क्रांति आंदोलनों की उस शृंखला की आखिरी कड़ी थी – जिसकी शुरुआत महात्मा गांधी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मंच से 1920-21 में की थी, जिसे हम अंग्रेजों के खिलाफ छेड़ा हुआ बड़ा अहिंसक असहयोग आंदोलन मानते हैं। लगभग एक दशक गुजरते ही पुनः गांधीजी ने ऐतिहासिक “दांडी यात्रा” की, नमक कानूनों को तोड़ने के लिए और इसका परिणाम देखा गया एक व्यापक स्तर पर हुआ “सविनय अवज्ञा आंदोलन” – जिसमें न जाने कितने देशवासियों ने अपनी सहभागिता दर्शाते हुए देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने की आकांक्षा से अपना सबकुछ बलिदान कर दिया। इन वर्षों में गांधीजी व कांग्रेस ने सारे लोगों को जोड़ते हुए देश भर में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ एक बड़ा मोर्चा तो तैयार करने में सफलता हासिल की ही। इस दौरान देश भर का राजनीतिक माहौल भी बिजली के करंट की तरह इतना चार्ज हो गया था कि इंडियन नेशनल कांग्रेस की एक पुकार पर ऐसा लगता था जैसे लोग अपना सर्वस्व जोश खरोश से - देने को तैयार खड़े हैं। खास बात यह रही कि इन आंदोलनों से जिस तरह की राजनीति खड़ी की गई, उसकी बुनियाद में (महात्मा गांधी के प्रभाव व श) उच्च नैतिकता, सत्य, अहिंसा के आदर्श थे, ऐसा माना गया और यह देन थी – सर्वाधिक महात्मा गांधी की, जिन्होंने अहिंसक सत्याग्रह की तकनीक से ब्रिटेन के बड़े साम्राज्य का विरोध कर पाना संभव बनाया। और इसका प्रतीक बनाया बहुत ही साधारण से वस्तु को – “नमक”। तर्क दिया कि जिस तरह हवा, पानी, सूर्य की रोशनी को पाने का हक हर भारतवासी का है, उसी तरह से प्रकृति द्वारा दिये गए नमक का उदाहरण भी है। इस पर अंग्रेजों द्वारा लगाया गया कानून पूर्णतया अनैतिक है।¹ उन्होंने खुल कर इस बात को कहा कि अंग्रेजों ने हमें राजनीतिक रूप से दासत्व की स्थिति में पहुंचा दिया है और हमारी संस्कृति की नींव को भी पूरी तरह ध्वस्त कर दिया है। अतः मैं इस शासन को एक अभिशाप के रूप में देखता हूँ व इसे पूर्णतया साफ करने की दिशा में अग्रसर हूँ।² इसी के ठीक 10 वर्षों बाद पुनः एक बार गांधीजी को “Quit India” की धमकी अंग्रेजों को देनी पड़ी। और जिसकी परिणति हम एक बड़े आंदोलन के रूप में देखते हैं।

8 अगस्त, 1942 को 3 बजे बंबई में “भारत छोड़ो प्रस्ताव”³ को बड़े ही उत्साह व खुशी के माहौल में पारित किया गया और चर्चाओं के दौरान उन सभी परिस्थितियों को दोहराया गया जिन्होंने देशवासियों को उस दारुण अवस्था में पहुंचा दिया था जहां बिना किसी भारतीय नेता को विश्वास में लिए ब्रिटिश सरकार ने एक तरफा भारत को द्वितीय विश्व युद्ध में एक पार्टी के रूप में घोषित कर दिया। क्रिप्स मिशन की असफलता को दर्शाया गया व यह प्रश्न उठाया गया कि कैसे भारत एक *स्लेव नेशन* के रूप में ऐसे युद्ध में सहभागिता कर सकता है – जो स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र, व मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए कथित तौर पर मित्र राष्ट्र लड़ रहे हैं। अतः भारत छोड़ो प्रस्ताव⁴ में इस बात की खुली

मांग की गई कि भारत से ब्रिटिश सरकार समय रहते ही या तो निकल जाए या फिर तत्काल प्रभाव से भारत को स्वतंत्र करे – ताकि फिर उसके लिए एक स्वतंत्र देश की हैसियत से अंतर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर निर्णय लेना संभव हो सके। गांधीजी ने खुल कर इस बात पर ज़ोर दिया कि इस बार पूर्ण स्वतन्त्रता से कम कुछ भी नहीं स्वीकार्य होगा। देश के लोगों से उन्होंने कहा कि सभी लोग अपने को साम्राज्यवाद से मुक्त मानते हुए देश की स्वतन्त्रता के लिए मोर्चा सम्हालें – और जब तक पूर्ण स्वाधीनता के उनके उद्घोष की प्राप्ति न हो – वे डटे रहें। उनका मंत्र था – “करो या मरो”⁵ – पर रुको नहीं। यदि जान भी चली जाए, तो रुकें नहीं।⁶ पर यहां भी महात्मा गांधी ने *अहिंसा की बात को दोहराते हुए* – स्वाधीनता की लड़ाई में लोगों को आहूति देने का आह्वाहन किया। यद्यपि यह सत्य है कि इस मुद्दे पर अपने कुछ काँग्रेस के नेताओं से उनका मतांतर हो गया (जैसा कि गांधी वांगमय से स्पष्ट हो जाता है)।⁷

इस पूरे परिदृश्य का एक दूसरा पक्ष यह है कि जब 9 अगस्त को कांग्रेस के हर स्तर के ढेरों नेताओं को ब्रिटिश सरकार ने जेल भेज दिया, तब सरकार के सामने जो स्थितियाँ उभर कर आयीं – उसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। उनकी यह सोच कि नेत्रत्व विहीन जनता या तो हतोत्साहित हो कर चुप हो जाएगी या फिर उनकी छुटपुट वारदातों को सरकार अपने दमन चक्र से शांत कर पाने में सफल हो जाएगी – बिलकुल बेबुनियाद साबित हुई। अगले आने वाले समय में जिस तरह से घटना क्रम आगे बढ़ा – उसका विवरण बहुत ही स्पष्ट शब्दों में ढेरों पुस्तकों में वर्णित है। और इसी को देखते हुए इस 1942 के आंदोलन को “स्वस्फूर्त क्रांति” की संज्ञा से विभूषित किया गया⁸। विदेशी सरकार के द्वारा उठाए गए इस कदम ने जैसे पूरे देश में आग में घी डालने का काम किया और जनता के क्रोध की ज्वाला फूट पड़ी। संतप्त व क्षुब्ध लोगो ने आंदोलन की कमान अपने हाथों में ले ली। नेताजी सुभास चन्द्र बोस के अनुयायी, पुराने क्रांतिकारी, काँग्रेस में रहते हुए भी गांधीजी की अहिंसा से असहमत काँग्रेस समाजवादियों ने अपने अपने ढंग से अगस्त क्रांति में अपना योगदान दिया। शायद भारतीयों का संकल्प अब उस मुकाम पर जा पहुंचा था, जहां उसे दमन से भी दबा पाना असंभव हो रहा था। सरकार लाठी, डंडे, गोली, कोड़ों, घुड़सवारों के टुकड़ियों, विना वारंट के गिरफ्तारियों पर भरोसा कर रही थी – किन्तु अत्याचार जितना बढ़ रहा था, विद्रोह उतना अधिक भड़क रहा था। क्रोध से भरे हुए लोग डाक घरों, तार घरों, टेलीफोन के खंबों पर हमला करके रेल की पटरियों को भी उखाड़ डालने पर आमादा थे। जेल में कैदियों को रिहा करवाया जा रहा था। बिहार व उत्तर प्रदेश में सबसे ज़्यादा विस्फोटक स्थिति थी। बलिया में तो प्रशासन को पंगु बनाकर एक समानान्तर सरकार ही स्थापित कर ली गई; और इसी तरह की स्थितियाँ महाराष्ट्र के सतारा, बंगाल के मिदनापुर व मध्य प्रदेश के अष्टी व चिमूर नमक स्थानों में भी देखी गईं।⁹ देशी रियासतें भी इससे अछूती नहीं रह सकीं। 1942 की अगस्त क्रांति की व्यापकता और भयानकता का अंदाज़ तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड लिनलिथगो के द्वारा तत्कालीन ब्रिटिश प्रधान मंत्री विंस्टन चर्चिल को भेजे हुए एक संदेश से लगाया जा सकता है, जिसमें उन्होंने लिखा कि “यहाँ मैं 1857 के बाद की सबसे गंभीर बगावत का मुकाबला करने में जुटा हुआ हूँ। सैनिक सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए हम इसकी व्यापकता और गंभीरता को दुनिया की निगाहों से छिपा रहे हैं।”¹⁰ निसंदेह, हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक फैला हुआ यह विद्रोह भारत की स्वतन्त्रता के जन साधारण के संकल्प का जयघोष था। साथ ही यह था राष्ट्रीय आंदोलन में काँग्रेस समाजवादियों के रूप में नेत्रत्व के एक नई पीढ़ी के उदय का संकेत। जयप्रकाश नारायण, आचार्य

नरेंद्रदेव, अच्युत पटवर्धन, राम मनोहर लोहिया, कमला देवी चट्टोपाध्याय, अरुणा आसफ अली, युसुफ मेहर अली आदि के नाम अब जागरूक देशवासियों के लिए परिचित नाम हो गए थे। वरिष्ठ नेताओं की गिरफ्तारी के बाद नेत्रत्व की इस दूसरी पंक्ति ने साहस और संकल्प के साथ (लेकिन गांधीजी की अहिंसा को कुछ ढीला छोड़ते हुए) 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन को दिशा व दृष्टि प्रदान करी¹¹ यद्यपि समय व स्थान के अभाव में यहाँ पर उन सभी का विस्तार से वर्णन कर पाना संभव नहीं है।

इन ऊपरी गतिविधियों में एक नया अध्याय जुड़ गया उस समय जब गांधीजी ने 10 फरवरी, 1943 से अपने 21 दिन के भूख हड़ताल का ऐलान किया, जिसने ब्रिटिश सरकार पर, विश्व जनमत पर, गैर काँग्रेस भारतीय जनमत पर, व भूमिगत आंदोलनकारियों पर चमत्कारिक प्रभाव छोड़ा। अभी तक तो विदेशी सरकार गांधी को लेकर चुप बैठी थी, किन्तु अब उनके *उपवास* की खबर से तो उसकी मुश्किलें इतनी बढ़ गईं कि अपने व्यवहार की सफाई देना उनका एक सरदर्द बन गया।¹² लिनलिथगो ने अपनी नाराजगी जाहिर करते हुए कहा कि गांधी का यह उपवास सिर्फ एक राजनीतिक ब्लैकमेल है।¹³ उनके बाकी के पत्र व्यवहार से भी यह पता चलता है कि अब वे हताशा में थे कि काँग्रेस की नयी पीढ़ी को छोड़ भी दें, पुरानी पीढ़ी भी चारों तरफ फैली अराजकता से परेशान हो – ऐसा नहीं लग रहा है। अपनी 17 दिसंबर की एक पब्लिक भाषण में वाइसरॉय ने “keen and deep regret” शब्दों का इस्तेमाल करते हुए संकेत किया, “an uprising ... of great gravity and great severity...”¹⁴ लिनलिथगो के ये शब्द उसके गहरे दुख को व्यक्त करते हैं।

यदि इन सभी घटनाओं को हम उपलब्ध सरकारी दस्तावेजों के आलोक में समझने का प्रयास करें तो *तस्वीर वो नहीं बनती जो अधिकांश 1942 पर तैयार की गई पुस्तकें हमें बताती हैं* - या फिर वे लेखक जो राष्ट्रीय आंदोलन में गांधीजी व नेहरू के वर्चस्व को वरीयता देते हैं। ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त टी. विकेंडेन की रिपोर्ट¹⁵ में इस आंदोलन से संबन्धित बहुत सी बातों पर प्रकाश डाला गया है। खासतौर पर ब्रिटिश सरकार में फैली हौल दिली – जिसे लिनलिथगो ने अपने 31 अगस्त, 1942 के पत्र में व्यक्त किया (जिसकी चर्चा अन्यत्र की गई है); और इसी प्रकार से सम्राट जॉर्ज षष्ठ के आत्म कथाकार व्हीलर का संकेत कि 1942 की घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया कि आंदोलनकर्ताओं की भीड़ को उकसाना कितना आसान हो गया था और देश के विभिन्न इलाकों में सरकारी कामकाज का विधिवत चल पाना कितना मुश्किल होता जा रहा था। जनता के सामने दी जा रही अपनी उद्धोषणाओं के विपरीत उस समय के ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल ने जुलाई के महीने के एक मंगलवार को सम्राट के साथ दिन का भोजन करते हुए यह खुलासा किया कि कैसे भारत को सत्ता का सौंपा जाना और इसका विचार एक स्वीकृत सच्चाई बनती दिख रही है अन्य पार्टी नेताओं के बीच। और सम्राट ने इस बात पर अचरच तो ज़हीर किया ही, इसे अपनी 28 जुलाई, 1942 की नोटबुक में भी दर्ज किया इन शब्दों में – कि चर्चिल की बात सुन कर मैं चौंक गया। ऐसा लगा कि क्रिप्स मिशन की असफलता, प्रेस का इस दिशा में सक्रिय होना, व अमेरिका के दबाव ने भी ब्रिटिश सांसदों को इस दिशा में सोचने के लिए बाध्य कर दिया था।¹⁶ और बाद की घटित घटनाओं ने Quit India movement से अंग्रेजों को Quit India तक पहुंचा देने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

प्रश्न यह है कि क्या अंग्रेजों द्वारा भारत की स्वतन्त्रता के तत्काल निर्णय का श्रेय - गांधी जी या इंडियन नेशनल काँग्रेस को मिलना चाहिए? क्या यह मानना ठीक होगा कि गांधीजी ने अंततः अंग्रेजों को इस बात पर सोचने के लिए मजबूर कर दिया कि भारत में उनका बने रहना अनैतिक है, इसलिए वे यहाँ से निकाल जाँएँ? किन्तु इसका खुलासा भी हो गया बाद में पी. वी. चक्रवर्ती, (जो कलकत्ता हाई कोर्ट के चीफ़ जस्टिस थे और बाद में वेस्ट बंगाल के गवर्नर भी हुए 1956 में) - ने अपने एक पत्र (30 मार्च, 1976) में इस बात का खुलासा किया कि जिस समय वे 1956 में पश्चिम बंगाल के कार्यवाहक राज्यपाल थे, उस समय लॉर्ड क्लेमेंट एटली (जो अगस्त, 1947 में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री थे) एक बार भारत की यात्रा पर आए। और दो दिन कलकत्ता के राजभवन में रुके थे। चक्रवर्ती जी ने उनसे सीधे यह प्रश्न किया कि क्या गांधीजी के आंदोलन का प्रभाव ऐसा रहा कि ब्रिटेन को जाना पड़ा या फिर कुछ और बात थी। इस पर एटली महोदय ने कई कारण गिनाए - पर सबसे महत्वपूर्ण उनके अनुसार वो था जिसका संबंध सीधे सीधे नेताजी सुभास चन्द्र बोस की गतिविधियों से संबंध रखता था, जैसे INA के क्रिया कलाप - जिसने सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को हिला कर रख दिया था। और जब रॉयल इंडियन नवी ने विद्रोह कर दिया - तब अंग्रेजों ने यह ऐहसास किया कि अब भारत में उनका बने रहना खतरों से खेलना ही होगा। भारतीय स्वतन्त्रता के संदर्भ में ब्रिटिश सरकार को सबसे बड़ा खतरा सुभास चन्द्र बोस से लग रहा था जिन्होंने अपनी स्पष्ट नीति, "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा " से अंग्रेजों में ब्रिटिश सेनाओं में भी विद्रोह होने की आशंकाओं को प्रबल कर दिया। अंततः ब्रिटेन को भारत से निकाल जाने में ही अपनी सुरक्षा नज़र आने लगी। एटली महोदय से जब चक्रवर्ती जी ने यह पूछा कि गांधी का प्रभाव आपकी सरकार पर कितना था भारत छोड़ने के संदर्भ में- तो वे हल्के से मुसकुराते हुए मुंह बिचका कर बोले- *शायद नगण्य।*¹⁷

1942 के आंदोलन पर किए गए लेखन में - इस तथ्य को पूरी तरह नज़र अंदाज़ किया गया कि बोस की प्रभावकारी भूमिका इस पूरे माहौल को तैयार करने में कितनी महत्वपूर्ण थी। या फिर उनके विचार जिन्हें उन्होंने खुल कर अपने लेखन में मुखरित किया और जेल में बंद होने के बावजूद वे उन्हें दोहराते रहे कि "It would be a gross political blunder to remain inactive in prison, when history was being made elsewhere".¹⁸ "Life under existing conditions is intolerable for me. To purchase one's continued existence by compromising with illegality and injustice goes against my very grain. I would throw up life itself rather than pay this price. Government is determined to hold me in prison by brute force. I say in reply, "Release me or I shall refuse to live" and it is for me to decide whether I choose to live or to die. Though there may be no immediate, tangible gain, no suffering, no sacrifice is ever futile. ... in every age and clime the eternal law prevails - the blood of the martyr is the seed of the church".¹⁹

इस पूरे प्रकरण में गांधी व बोस के बीच हुई भेंट वार्ताएं, व उनके राजनीतिक क्रिया कलापों को सामान्य लेखन में भी स्थान नहीं मिलता। जिससे निश्चित तौर पर हमारे राष्ट्रीय आंदोलन का एक गंभीर अध्याय अंधकार में ही छूट जाता है। उपरोक्त दस्तावेजों के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारत छोड़ो आंदोलन – वास्तव में गांधी युग की समाप्ति का संकेत देता है – क्योंकि अब तक की उनकी अहिंसा व असहयोग की नीति लोगों की नज़रों में देश की स्वतन्त्रता के प्रश्न से ज़्यादा बड़ी नहीं थीं, इसलिए समय को देखते हुए उसे अनुपयोगी मान लिया गया। सरदार पटेल भी इस क्रांतिकारी माहौल में यह बोल उठे कि ब्रिटिश राज के इतिहास में इसके पहले शायद इतना व्यापक आंदोलन नहीं हुआ है। और यद्यपि अहिंसा ने अपनी जड़ें गहरी जमा ली थीं किन्तु यह सच तो अब सभी को स्वीकार करना होगा कि पूरे विश्व में जब हिंसा ही सामान्य मापदंड है – तो भारत को हिंसक होने का दोष देना सिर्फ शैतानी ही है।²⁰

अगस्त क्रांति के स्वरूप को लेकर कई तरह के लेखकों ने कई तरह की बातें की हैं। जहां कुछ ने इस पूरे दौर में हुई हिंसा व संघर्ष को गांधी युग के समाप्त हो जाने का संकेत माना है, और यहाँ तक कह डाला कि गांधीजी व अन्य वरिष्ठ कांग्रेस जन ने भी *अहिंसा* को तिलांजलि देना ही - अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्वीकार कर लिया; वहीं परंपरावादी लेखकों का आज भी यही मानना है कि भारत छोड़ो आंदोलन पूरी तरह से कांग्रेस की ही देन है, और उनकी दृष्टि में अगर केन्द्रीय निर्देशन में यह आंदोलन हुआ होता, तो यह हिंसक न हो पाता।²¹ इन्हें यह भी मंजूर नहीं है कि 1942 में हुआ आंदोलन स्व स्फूर्त आंदोलन की श्रेणी में रखा जाए – क्योंकि इनका तर्क यह है कि स्व स्फूर्त वो बना ही इसलिए कि सारे नेताओं को गिरफ्तार करके मैदान खाली कर दिया गया; कांग्रेस के नेत्रत्व में एक लंबे समय से भारतीय लोगों को राजनीतिक जागरूकता व राष्ट्रवाद का पाठ पढ़ाया ही जा रहा था। तो जन आंदोलनों का दौर तो बहुत पहले ही शुरू हो चुका था – अतः 1942 के आंदोलन को स्व स्फूर्त मान लेना भूल होगी क्योंकि वो अचानक थोड़ी हुआ। इसी प्रकार से mass upheavals भी leadership के न होने के कारण संभव हुए। इसमें कोई दो राय नहीं कि इसका scale अन्य पहले के आंदोलनों की अपेक्षा काफी विस्तृत था – पर यह कोई autonomous मूवमेंट थोड़ी था – जिसका बोध ‘spontaneous movement’ शब्द हमें कराता है। इसका संगठनात्मक ढांचा तो इंडियन नेशनल कांग्रेस का ही खड़ा किया हुआ था। इनका यह भी कहना है कि यद्यपि mass upheavals ने मजबूत शक्ति का सृजन किया, किन्तु वह किसी क्रांतिकारी दर्शन से थोड़ी निकली थी। और न ही उसने किसी क्रांति को जन्म दिया। इससे किसी सामाजिक, आर्थिक क्रांति का जन्म तो हुआ नहीं। न ही इसने किसी संरचनात्मक परिवर्तन को ही प्रेरित किया – जिसे इस स्व स्फूर्त आंदोलन की एक visible legacy के रूप में देखा जा सकता हो।

उपरोक्त इतिहासकारों, विचारकों का 1942 के बारे में आंकलन संभवतः आधुनिक भारतीय इतिहास के बारे में प्रचारित की गई उस अवधारणा से प्रेरित है जिसके अनुसार 19वीं शताब्दी के पहले भारत एक राष्ट्र था ही नहीं²²। क्योंकि यहां की मजहबी, भाषाई, सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण और सबसे अधिक व महत्वपूर्ण उसके राजनीतिक

रूप से असंगठित होने के कारण – यह कहना गलत होगा की इसमें रहने वाले लोग कोई भी कार्य किसी राष्ट्रीय भावना / हित से प्रेरित होकर भी कर सकते हैं। और यह कार्य संभव तभी हो पाएगा जब उसे किसी केन्द्रीय शक्ति का सबल नेतृत्व प्राप्त हो। क्योंकि ऐसा नहीं था, इसलिए ही 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म उपरांत देश का वास्तविक स्वतन्त्रता संग्राम शुरू होता है। पहली बार एक व्यापक पैमाने पर, केन्द्रीय निर्देशन में – देश में आंदोलन करके ब्रिटिश प्रभुत्व को चुनौती देना “संभव हो सका था। “ A nation in the making’ (बहु चर्चित पुस्तक) के पीछे यही विचार विद्यमान था। इसलिए ही येन, केन, प्रकारेण – भारत छोड़ो आंदोलन का श्रेय भी एवं उसकी सफलता / स्वरूप का निर्धारण भी ये विचारक इसी सोच समझ के तहत करते हैं।

किन्तु अब समय आ चुका है जब राष्ट्रहित में – इस सत्य को उजागर किया जाए कि हर संकीर्ण मंसूबे की प्राप्ति के लिए महात्मा गांधी या जवाहरलाल नेहरू के वक्तव्यों अथवा गतिविधियों की आड़ लेना विघटनकारी ताकतों के लिए उचित नहीं होगा। दो विश्व युद्धों के दौरान देश में स्वतन्त्रता संग्राम के नाम पर हो रही राजनीति का जो स्वरूप हमारे सामने उभर कर आया है, उससे तो चित्र कुछ और दिखता है। इंडियन नेशनल कांग्रेस के जन्म के बाद जहां हम पाते हैं – समूचे देश के विभिन्न हिस्सों से उसके वार्षिक अधिवेशनों में हिस्सेदारी करने आए लोग; व गांधीजी के आने के बाद और उनके द्वारा जिस मार्ग का अनुसरण किया गया, कांग्रेस की पहुँच देश भर के गाँव-गाँव तक हो गई। परिणाम हुआ कुछ ही समय में वो संस्था जो कुछ सभ्रांत वर्गों व अंगरेज़ी परास्त लोगों से सुशोभित होती थी – अब पूरे देश के जनता की सहानुभूति व श्रद्धा की पात्र हो गई। गांधीजी की इस चमत्कारिक सफलता व लोगों पर उनकी पकड़ – कांग्रेस की सफलता का सबसे बड़ा कारण बनी। लेकिन ऐसा क्या हुआ कि 20वीं शताब्दी के कुछ वर्ष बीतते ही हम पाते हैं – राजनीति में एक नई धारा का सृजन - और वो थी “A nation in the miss-making” – जिसमें राष्ट्र को बनाए रखने की बात गौड़ हो चली व संघटकों (constituents) को खुश रख के मिलकर चलने का भाव इंडियन नेशनल कांग्रेस के लिए ज़्यादा महत्वपूर्ण हो गया। देश में उभरते हुए इस राजनीतिक माहौल में – अपने-अपने उद्देश्य प्राप्ति को राष्ट्र-हित से ऊपर आँका जाने लगा। परिणामस्वरूप 1921 से 1947 तक मिथ्या व काल्पनिक आधारों पर विचार, प्रचार, एवं व्यवहार का बोलबाला रहा। जहां बात होनी चाहिए थी ये कि – राष्ट्रवादी एक हों – वहाँ नारे लगाने लगे कि हिन्दू-मुस्लिम एक हों; छूत-अछूत एक हों; पारसी व ईसाई एक हों; उत्तर- दक्षिण एक हों; गुजराती-मराठे एक हों, बंगाली-आसामी एक हों – आदि आदि। जहां बात उठनी चाहिए थी कि सभी राष्ट्रवादी अपने हैं – वहाँ बात होने लगी कि सब भाई-भाई हैं, और सबको फलने-फूलने का अधिकार है। जहां बात होनी चाहिए थी कि एक राष्ट्र, एक संस्कृति, एक भाषा व एक भावना और एक न्याय हो – वहाँ शोर मचाने लगा कि राष्ट्रवाद मानवता-विरोधी विचार है, व संस्कृति का अर्थ है – रोटी, कपड़ा, और मकान। जहां बात होनी थी कि परिश्रम करना सबका कर्तव्य है, वहाँ कहा जाने लगा कि फल पाना सबका अधिकार है व भोग में समानता लाना ही शासन का परम उद्देश्य होना चाहिए। अतः इतिहास में इन महत्वपूर्ण विषयों व पक्षों का खुल कर आंकलन करना - समय की आवश्यकता बन चुकी है।

संदर्भ सूची:

1. The Collected Works of Mahatma Gandhi. C.f. D.N. Panigrahi, Quit India and the struggle for freedom, Delhi, 1984.
2. Ibid.
3. AICC Files/Papers at NMML.
4. “Only the glow of freedom now can release that energy and enthusiasm of millions of people which will immediately transform the nature of millions of the war ...” op.cit.
5. Gandhi’s speech at AICC Meeting, Bombay, August 8, 1942
6. Gandhi’s message to the country, Bombay, 5 a.m. 9th August, 1942
7. The Collected Works of Mahatma Gandhi, LXXVI, Ahmadabad, 1979
8. F.G. Hutchins, Spontaneous Revolution: The Quit India Movement, Delhi, 1971
9. P.N. Chopra (ed.) Quit India Movement: British Secret Report, Delhi, 1976
10. Secret Report, op.cit.
11. Ibid.
12. Spontaneous Revolution, op.cit. p. 318
13. Ibid. p. 322
14. India Un reconciled p. 94 c.f. Spontaneous Revolution, op.cit. 329
15. British Secret Report, op.cit
16. Ibid.
17. Published in British newspaper Tribune.
18. S.C. Bose, The Indian Struggle, 1920-47, Bombay, 1964, p. 345
19. Ibid.
20. c.f. Quit India Movement: British Secret Report, op.cit
21. c.f. Quit India and Struggle for Freedom, op.cit. p. 38
22. John Strachey, India, Its Administration and Progress, London, 1911
23. Ibid.

संतों की भूमि हरियाणा हरियाणा के साहित्य का मूल उत्सर्ग : अध्यात्म चिन्तन धारा



श्रीमती भावना सक्सेना, सूरीनाम

भारत राजदूतावास, पारामारिबो, सूरीनाम

स्वाधीन भारत के सत्रहवें स्वतंत्र राज्य के रूप में हरियाणा का उदय 1 नवंबर 1966 को हुआ। भारतीय गणतंत्र के अलग राज्य के रूप में इस प्रदेश का इतिहास भूगोल भले ही मात्र 51-52 वर्ष पुराना है, किंतु इसका एक समृद्ध इतिहास है। यहां पर किए गए उत्खननों से पता चलता है कि सिंधु घाटी और मोहनजोदड़ो संस्कृति का विकास यहीं पर हुआ। इसका उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है और इसे आदि सृष्टि की जन्म स्थली भी माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि मानव जगत की उत्पत्ति जिन वैवस्वत मनु से हुई वह इसी प्रदेश के राजा थे। मनुस्मृति की रचना भी इसी प्रदेश में हुई मानी जाती है। मनुस्मृति में उल्लेख है कि सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच जो प्रदेश स्थित है वह ब्रह्मावर्त अर्थात् हरियाणा है। मनु के अनुसार इस प्रदेश का अस्तित्व देवताओं से हुआ इसलिए इसे ब्रह्मावर्त कहा गया। हरियाणा ऋषि-मुनियों की धरा है जहां महर्षि विश्वामित्र, च्यवन, वशिष्ठ, भृगु, दुर्वासा, जमदग्नि आदि ने तपस्या की। पुरातत्त्व वेत्ताओं के अनुसार हरियाणा की वणावली, सीसवाल, कुणाल, मिर्जापुर, दौलतपुर और भगवानपुरा में आद्यैतिहासिक कालीन प्रागहड़प्पा, हड़प्पा, परवर्ती हड़प्पा आदि अनेक संस्कृतियों के अनेक प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

हरियाणा भारतीय संस्कृति का केंद्रीय स्थल है। यहां की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परंपराएँ अत्यंत प्राचीन, समृद्ध एवं गौरवपूर्ण हैं। यह दर्शन और अध्यात्म की स्थली है। यहां वेदों की ऋचाओं का गायन हुआ, उपनिषदों, ग्रंथों, अरण्यकों, पुराणों, स्मृतियों की रचना हुई। महाकाव्य महाभारत की रचना यहीं पर हुई, महाभारत का विश्व प्रसिद्ध युद्ध भी हरियाणा के कुरुक्षेत्र में लड़ा गया। इस युद्ध के स्वरो के बीच से उभरा भगवान श्रीकृष्ण का स्वर जीवन का सर्वोच्च दर्शन ग्रंथ बना। यह ऋषि मुनियों की स्थली है। बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव, शाक्त, सिद्ध, नाथ, सूफी आदि समय-समय पर यहां की संस्कृति को समृद्ध करते रहे हैं।

सातवीं आठवीं शती से 16वीं शती तक हरियाणा में जो मूर्तियाँ मिली है उनसे भी इस बात की पुष्टि होती है कि यहां विभिन्न संप्रदायों ने सांस्कृतिक परंपरा को समृद्ध किया है। पिंजौर में 10 वीं शताब्दी की शिव, हरिहर, अग्नि, उमा महेश्वर, विष्णु, ब्रह्म, विद्याधर, सूर्य एवं हरिहर की, रोहतक में यक्षिणी की, झज्जर में मत्स्य, कच्छप, गंधर्व, वराह, नरसिंह, परशुराम, वामन, बुद्ध, कल्कि, विष्णु की, और अस्थल बोहर में पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ मिली है। इस से ज्ञात होता है कि यहां शैव, वैष्णव, जैन एवं बौद्ध मत का काफी प्रभाव था।

हरियाणा को अनेक महान संतों की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है। यहां अनेक संप्रदायों और मतों का प्रचलन हुआ। इन संप्रदायों के संतों ने अपनी अमृतवाणी से हरियाणा की भूमि को सींचा और लोगों को धर्मपरायणता एवं नैतिकता से जीवन जीने की प्रेरणा दी।

इनमें अनेक संतो ने साहित्य सृजन भी किया। डॉक्टर सूरजभान ने अपनी शोध प्रबंध *हरियाणा का संत साहित्य* में गरीब दास, दादू पंथी, कबीर पंथी, नेता नंदी, परमानंदी, घीसा पंथी, चरणदासी, साधु संप्रदाय, बेनामी समता पंथी, उदासी, निर्मली, विश्रोई, सच्चा सौदा, नांगी संप्रदाय, राधा स्वामी आदि से संबंधित अनेक संतो एवं उनकी कृतियों का उल्लेख किया है। इन संतों ने रोहतक, हिसार, जींद, सिरसा, नारनौल, रेवाड़ी, अंबाला, कुरुक्षेत्र क्षेत्रों में अपने संप्रदायों की स्थापना की और धर्म प्रचार किया। सामान्यतः हरियाणा में इन संतों का प्रचार प्रसार 18वीं और 19वीं शताब्दी में ही हुआ और इनमें अधिकतर निर्गुण पंथ के पूर्ववर्ती प्रतिष्ठित संतों कबीर, दादू, परमानंद, घीसा, चरणदास आदि की परंपरा को ही आगे बढ़ाया। हरियाणा के संतो में सूरदास, गरीब दास, निश्चल दास, भाई संतोख सिंह, नितानंद, जैतराम आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनका सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान है। यह सभी संत साधक अपनी साधना और विचारधारा से बहुत समय तक पूरे भारत, मुख्य रूप से उत्तर भारत को प्रभावित करते रहे। संतमत में अनेक संप्रदायों और पंथों की स्थापना हुई किंतु यह संप्रदाय अधिकतर किसी प्रभावी संत के नाम पर ही उनके शिष्यों द्वारा स्थापित किए गए। इन विभिन्न संप्रदायों की विचारधारा सामान्यतः एक सी है, उसमें कोई सैद्धांतिक अंतर नहीं है।

हरियाणा के संत कवियों की दृष्टि में प्रेम और ब्रह्म

हरियाणा के संत कवियों ने ब्रह्म, जीव, जगत, माया, ज्ञान, कर्म, भक्ति, योग, वैराग्य आदि को अपने काव्य का मुख्य विषय बनाया है। गरीब दास, नितानंद, जैतराम, जीतादास, निश्चल दास, संतोख सिंह आदि संतो ने प्रेम के स्वरूप का निरूपण बहुत विस्तार से किया है। इनके अनुसार वह परब्रह्म पूर्ण है। सभी चीजों का जीवन, सब घट अंतर्यामी, अलख जगदीश, जल-थल में व्याप्त, अजन्मा, गुणातीत, सकल ब्रह्मांड में व्याप्त, रूप-रंग, रेखा विहीन, अचल, अनंत है। वह सभी में है और सभी उसमें निवास करते हैं। गरीब दास के अनुसार वह निर्गुण सगुण दोनों से न्यारा है। वह शत स्वरूपी घट घट में व्याप्त हैं, गुप्त भी हैं, प्रकट भी हैं, अगम, अथाह है, सारी सृष्टि उसी में विराजमान हैं, न वह पुरुष है न नारी, न हिंदू है न मुसलमान। वह धूप छाया से परे है। वह काल, जाल योनी, भय, यंत्रणा से रहित है। वह न खाता है न पीता है, अभय तत्व है, पुष्पगंध जैसा सूक्ष्म तत्व है।

नितानंद के अनुसार वह सभी देवों का देव, चैतन्य, ज्योति स्वरूप, सभी जीवों का प्राण है; अलग, अडिग, अडोल, मन बुद्धि से परे सदा एकरस है। सिंधु में नीर तरंग की भांति जड़ चेतन का प्रेरक है। ब्रह्मांड में व्याप्त किंतु अलिप्त है, सारी सृष्टि का कर्ता है। ब्रह्मा और महेश उसी का ध्यान रखते हैं। समता पंथियों ने उसे पूर्ण परमेश्वर, अखंड, अवकत, अकाल, अपार, मालिक, अनादि, सर्वतीर्थ, निरंकार, अद्वैत, अनंत शक्ति संपन्न एवं लीलामय कहा है। वह सभी का दाता और रक्षक है। भाई संतोख सिंह ने भी ब्रह्म को निराकार, निर्गुण, अलख, अरूप, अगोचर, अभेद कहा है।

इन संतों में से अनेक की मान्यता है कि वह ब्रह्म ही भक्तों के उद्धार के लिए सगुण रूप धारण करके अवतरित होता है। जीताराम के अनुसार वह कमल नाभि में निवास करने वाला आदि स्वामी है इसलिए उन्होंने उसे गोपाल, राम,

ठाकुर, पतित-पावन एवं सर्व शक्तिमान कहा है। इसलिए हरिदास तथा जैतराम ने उस प्रभु के साथ प्रणय संबंध स्थापित करते हुए भी स्पष्ट किया है कि वह सर्वत्र व्याप्त है, नित्य हमारे निकट है, यथा-

प्रीतम को पतियाँ लिखो, जो प्रीतम हवै दूर।
नजर ना आवे हरिदास, सकल रह्यो भरपूर।। (हरिदास)

हरियाणा के संतों में सूरदासजी का विशेष स्थान है। यद्यपि गोस्वामी सूरदास के जन्म स्थान के बारे में मतभेद हैं फिर भी अधिकतर विद्वानों ने इनका जन्म स्थान दिल्ली के पास सीही नाम के गाँव में माना है। इनका जन्म एक अत्यन्त निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके तीन बड़े भाई थे। सूरदास जन्म से ही अन्ध थे किन्तु सगुन बताने की उनमें अद्भुत शक्ति थी। 6 वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने अपनी सगुन बताने की विद्या से माता-पिता को चकित कर दिया था। किन्तु इसी के बाद वे घर छोड़कर चार कोस दूर एक गाँव में तालाब के किनारे रहने लगे थे। सगुन बताने की विद्या के कारण शीघ्र ही उनकी ख्याति हो गयी। गानविद्या में भी वे प्रारम्भ से ही प्रवीण थे। शीघ्र ही उनके अनेक सेवक हो गये और वे 'स्वामी' के रूप में पूजे जाने लगे। 18 वर्ष की अवस्था में उन्हें पुनः विरक्ति हो गयी। और वे यह स्थान छोड़कर आगरा और मथुरा के बीच यमुना के किनारे गऊघाट पर आकर रहने लगे।

सूरदास जी की शिक्षा व्यवस्थित रूप से नहीं हुई किन्तु उन्होंने स्वाध्याय और अनुभव के आधार पर काव्य रचना की। उनके काव्य से उनके बहुरत, अनुभव सम्पन्न, विवेकशील और चिन्तनशील व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। उनका हृदय गोप बालकों की भाँति सरल और निष्पाप, ब्रज गोपियों की भाँति सहज संवेदनशील, प्रेम-प्रवण और माधुर्यपूर्ण तथा नन्द और यशोदा की भाँति सरल-विश्वासी, स्नेह-कातर और आत्म-बलिदान की भावना से अनुप्रमाणित था। साथ ही उनमें कृष्ण जैसी गम्भीरता और विदग्धता तथा राधा जैसी वचन-चातुरी और आत्मोत्सर्गपूर्ण प्रेम विवशता भी थी। काव्य में प्रयुक्त पात्रों के विविध भावों से पूर्ण चरित्रों का निर्माण करते हुए वस्तुतः उन्होंने अपने महान व्यक्तित्व की ही अभिव्यक्ति की है। उनकी प्रेम-भक्ति के सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भावों का चित्रण जिन आंग्ख्य संचारी भावों, अनगिनत घटना-प्रसंगों, बाह्य जगत, प्राकृतिक और सामाजिक जीवन के अनन्त सौन्दर्य चित्रों के आश्रय से हुआ है, उनके अन्तराल में उनकी गम्भीर वैराग्य-वृत्ति तथा अत्यन्त दीनतापूर्ण आत्म निवेदात्मक भक्ति-भावना की अन्तर्धारा सतत प्रवहमान रही है परन्तु उनकी स्वाभाविक विनोदवृत्ति तथा हास्य प्रियता के कारण उनका वैराग्य और दैन्य उनके चित्त को अधिक ग्लानियुक्त और मलिन नहीं बना सका। आत्म हीनता की चरम अनुभूति क बीच भी वे उल्लास व्यक्त कर सके। उनकी गोपियाँ विरह की हृदय विदारक वेदना को भी हास-परिहास के नीचे दबा सकीं। करुण और हास्य का जैसा एकरस रूप सुर के काव्य में मिलता है, अन्यत्र दुर्लभ है। सुर ने मानवीय मनोभावों और चित्तवृत्तियों को, लगता है, निःशेष कर दिया है। यह तो उनकी विशेषता है ही परन्तु उनकी सबसे बड़ी विशेषता कदाचित्त यह है कि मानवीय भावों को वे सहज रूप में उस स्तर पर उठा सके, जहाँ उनमें लोकोत्तरता का संकेत मिलते हुए भी उनकी स्वाभाविक रमणीयता अक्षण्ण ही नहीं बनी रहती, बल्कि विलक्षण आनन्द की व्यंजना करती है। सुर का काव्य एक साथ ही लोक और परलोक को प्रतिबिम्बित करता है।

गरीबदास

हरियाणा के संतो में गरीब दास का विशेष स्थान है। इन्हीं के नाम से गरीबदासी पंथ की स्थापना हुई। यह छुड़ानी गांव के निवासी थे। उनका जन्म रोहतक की झज्जर तहसील में 1717 में एक किसान के घर में हुआ और वह आजीवन गृहस्थ रहे। गरीब दास कबीर को अपना प्रेरक गुरु मानते थे (दास गरीब कबीर का चेहरा)

इन्हें भक्ति और काव्य दोनों के लिए जाना जाता है। गरीब दास ने एक विशाल संग्रह की रचना की जो गरीबग्रंथ के नाम से प्रसिद्ध है। जिसे रत्न सागर भी कहते हैं। इन्होंने गरीबदासी नामक सम्प्रदाय की नींव रखी। स्वामी चेतन दास के अनुसार इन्होंने 18500 से अधिक पदों की रचना की। एच. ऐ. रोज के अनुसार गरीबदास की ग्रन्थ साहिब पुस्तक में 7000 कबीर के पद लिये गए थे और 17000 स्वयं गरीब दास ने रचे थे। गरीबदास का दर्शन था कि राम में और रहीम में कोई अन्तर नहीं है।

गरीबदास जी की वाणी में विषय की व्यापकता एवं विविधता है। ब्रह्म, जीव, जगत, माया, मोक्ष, आवागमन, गुरु, हरिभक्ति, सत्यनाम स्मरण, सतसंग- कुसंग, साधु, असाधु दया, निर्दयता, परोपकार, लोक, विषय वासनाओं के त्याग आदि पर अपने विचार प्रकट किए। इनके राम अगम, अलख, अविकल, अगोचर हैं फिर भी इन्होंने सगुण रूप को महत्व दिया। श्री सद्गुरु की ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करते हैं। आध्यात्मिकता के साथ-साथ इन्होंने लौकिक एवं व्यवहारिक जीवन को उन्नत स्वच्छ और उदात्त बनाने पर विशेष बल दिया। उन्होंने कहा कि मरने पर भी शरीर को जलाना नहीं चाहिए बल्कि उसे किसी वन में डाल देना चाहिए जिससे पक्षी उसका मांस खा सकें। इनकी साधना पद्धति में वैष्णव और योग मत का समुचित संयोग है। इन्होंने सुरती साधना पर भी बल दिया है। संसार को स्वप्नवत् समझकर सात्विक जीवन जीते हुए नित्य हरिनाम में चित्त लगाए रखना ही उनके जीवन का आदर्श है।

इनकी वाणी सहज और व्यवहारिक भाषा में हैं। सामान्यतः खड़ी बोली के निकट है और उसमें बांगरू, राजस्थानी, ब्रज, फारसी, पंजाबी, आदि के शब्दों का उपयोग किया गया है। लोक जीवन से संबंधित मुहावरे भी काफी प्रयोग हुए हैं। उपमा, रूपक दृष्टांत उदाहरण, अनुप्रास आदि अलंकारों का सार्थक प्रयोग हुआ। दोहा, कवित्त, सवैया, अरिल्ल, रमैनी, बँत, झूलना, सोरठा, आदि के अतिरिक्त इन्होंने पदों की भी रचना की है। इन में प्रचुर संगीत तत्व भी है। इन्होंने दिल्ली, हरिद्वार, ऋषिकेश, काशी आदि के मठ तथा कुटियाँ बनवाई थीं। इन्हीं के नाम से हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान और गुजरात में लगभग 110 आश्रम हैं। आपने 1788 में शरीर त्याग और स्वर्ग की राह ली।

संत जैतराम

गरीब दास के पुत्र एवं शिष्य जैतराम की वाणी 'ग्रंथ साहब - सद्गुरु श्री जैतराम जी महाराज' के रूप में प्रकाशित है। इसमें 6400 छंद हैं। सामान्य निर्गुण पंथी होते हुए भी इन्होंने दशरथ पुत्र पतितपावन अवतारी राममें आस्था प्रकट की है। उन्होंने अपनी वाणी में हरियाणवी मिश्रित खड़ी बोली का ही प्रयोग किया।

संत जैतराम गरीब पंत के विख्यात संत थे। उन्हें अपने गुरु एवं पिता महान संत गरीबदास से गद्दी उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी। इनका जन्म 1794 में जिला रोहतक के छुड़ानी गांव में हुआ। वह साधारण कृषक परिवार के थे। घुड़ानी गांव में छतरी साहब इनका साधना स्थल रहा और वह प्रमुख शक्ति पीठ है। संत जैतराम भी अपने गुरु गरीबदास की भांति कबीर पंथ के अनुयायी रहे। उनकी वाणी पर कबीरवाणी की गहरी छाप है। अपनी वाणी में जैतराम भी अपने गुरु गरीबदास की वाणी की छाप लगाते चलते हैं। गरीबदास में ही वह कबीर दास के दर्शन पाते हैं और साधना करते हुए कहते हैं-

गरीब कबीर भेद नहीं दूजा जैतराम नित कीजे पूजा।

(सूरज भान, हरियाणा का संत साहित्य, हरियाणा साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण, 1986 पृष्ठ 69)

गुरु के निर्देशन में इन्होंने अध्यात्म साधना को बड़ी निष्ठा से अपनाया। श्री भक्त राम जी ने उनकी मृत्यु के पश्चात् इनके जीवन चरित्र पुस्तक की रचना की जिससे इनके जीवन वृत्त पर प्रकाश पड़ता है। जैतराम जी की संपूर्ण वाणी ग्रंथ साहिब सदगुरु श्री संत जैतराम जी की वाणी नाम से सन 1955 ईस्वी में प्रकाशित हुई।

संत जैतराम जी के व्यक्तित्व की बहुत सी जानकारी उनके अंतःसाक्ष्य से उपलब्ध हो जाती है। वह जो दूसरों से अपेक्षा करते हैं उसे स्वयं अपने लिए भी अनिवार्य मानते हैं और व्यवहार में अपनाते हैं। उनके अनुसार कम खाना, कम बोलना और जीवन में अपनी एक जैसी संस्कृति को बनाए रखने तथा योग एवं साधना में रत रहना चाहिए।

“थोड़ा बोले थोड़ा खावे सहज गति से नाद जमावै”

अधिक आहार व्यक्ति को शिथिल व आलसी बनाता है और साधना में विघ्न डालता है। अल्पभाषी होने से साधक की चेतना के बंद कपाट खुल जाते हैं-

प्रथम अंचल संजम राखै, अति आहार भोजन नहीं भाखै।

थोड़ा बोले थोड़ा डोलै, उल्लास कपाट सहजें खोलै।

संत जैतराम अग्रणी संतो की भांति धार्मिक आडंबरों और कर्मकांडों, दिखावटी जप तप, तीर्थ तथा इनके अभियान में डूबने की अपेक्षा मनसा साधना, ध्यान, योग में चित्त लगाने पर बल देते थे क्योंकि बाह्य आडंबर हमें परम ब्रह्म सेवा से दूर लेजाकर भ्रम में भटका देते हैं। अतः अंतर्मुखी साधना पर अधिक बल देते हुए उन्होंने कहा है कि इस संसार में सब को जन्म देने वाला परमात्मा, ईश्वर एक है अन्य कोई नहीं। सृष्टि की रचना भी एक शब्द से ही हुई है। अतः विभेद द्वैत भिन्न की कल्पना भी नहीं करनी चाहिए। आशय यह कि ऊँच-नीच, छुआछूत, धर्म, सम्प्रदाय, मत विभेद आदि के भाव विचार केवल वितंडा है इन्हें अपनी सोच व्यवहार में नहीं आने देना चाहिए।

अठारहवीं सदी भारत के इतिहास में भीषण अराजकता की सदी मानी जाती है। इस दौर में चारों तरफ लूट-खसोट और राजा-महाराजाओं में टकराव व युद्धों का जोर था। दिल्ली के पास होने के कारण हरियाणा भी आक्रमणकारियों की चपेट में आने से न बच सका। उस समय यहां के किसानों के एक हाथ में हल की मूठ तो दूसरे हाथ में तलवार हुआ करती थी। अराजकता की इस सदी में भी यहां गूढ़ साहित्य रचा गया जो ज्यादातर हिंदी में था। उस समय के साहित्यकारों में स्वामी नितानंद महाराज चोटी के साहित्यकार थे।

नितानंद महाराज संत गरीबदास के समकालीन थे। स्वामी नितानंद की जीवनगाथा मौखिक परंपराओं से होती हुई कल्पना और सच्चाई के साथ इतनी घुलमिल गई कि आज वास्तविकता का पता लगाना कठिन हो गया है। फिर भी इन वृत्तांतों के पीछे एक ऐसे व्यक्तित्व की झलक मिलती है जो एक महान संत, पूर्ण सतगुरु और सरल हृदय भक्त होने के साथ ही स्पष्टवादी, निर्भीक तथा अपने आदर्शों के लिए हर प्रकार की आलोचना और यातना सहने को तैयार रहते थे। स्वामी नितानंद का जन्म सन् 1717 में फाल्गुन माह की पूर्णिमा के दिन नारनौल में ब्राह्मण कुल में हुआ था। इतिहास के अनुसार नितानंद के पिता जी ने उन्हें उच्च शिक्षा दिलवाई जैसा कि उनकी वाणी संग्रह से पता चलता है। उनको अनेक भाषाओं हिन्दी, ऊर्दू, फारसी, पंजाबी, अरबी आदि का ज्ञान था। इसके अतिरिक्त काव्य के वे महापंडित थे। उनकी रचनाओं में दोहा, चौपाई, सोरठा, छप्पय, कविता, गजल, कटवाली, होरी, ठुमरी तथा विभिन्न प्रकार के राग जैसे असावरी, बिलावल, गौरी, कल्याण, निहाग, झंजोटी, बारह खड़ी आदि पाए जाते हैं।

नितानंद निर्गुण भक्ति परंपरा के संत थे। उन्होंने स्वयं ईश्वर प्रेम को प्राप्त करने के लिए जीवन पर्यन्त प्रयास किया और दूसरों को भी इसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से अपने विचारों को नैसर्गिक अभिव्यक्ति प्रदान की। उनकी वाणी में जीव, जगत, माया आदि से संबंधित जो विचार प्राप्त होते हैं वे उनकी मौलिक अनुभूतियाँ हैं, जिन्हें नितानंद की दार्शनिक विचारधारा में देखा जा सकता है। स्वामी नितानंद जी ने कबीर आदि संतों की तरह माया को सांसारिक कष्टों का मूल कारण माना है। वह अपनी त्रिगुणात्मकता के कारण तरह-तरह के आकर्षणों को उत्पन्न करती है और जीवात्मा को लुभा लेती है जिस कारण जीव ईश्वर नाम को भूल जाता है।

माया से काया भई, काया से सब भोग।
भोगों से सभ को लगया, जन्म-मरण का रोग॥

नितानंद ने संत परंपरा का पालन करते हुए अपने रहस्यवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। इनमें रहस्यवादिता साधनात्मकता के स्थान पर भावात्मकता अधिक है। वे ब्रह्म को पाना चाहते हैं। उससे अपना संबंध स्थापित करना चाहते हैं :

जिस नगरी बालम बसै, हम उस नगर चलां।
अखियाँ पंख बालम बसै, सम्मुख जाय मिलां॥

अपने गुरु गुमानी दास जी के आदेश पर नितानंद महाराज ने माजरा दूबलधन के जटैला जोहड़ के किनारे 41 वर्ष तक कठोर साधना की। बाद में इसी स्थान पर विक्रमी संवत् 1856 में शरीर त्याग कर परलोक गमन कर गए। वे अपने बनाए पद ही सुमधुर वाणी में जटैला जोहड़ के किनारे गाया करते थे। उन्हीं पदों के संकलन से ग्रंथ बने। उन्होंने अपने जीवनकाल में लगभग डेढ़ दर्जन ग्रंथों की रचना की। उनका लिखा 'सत्य सिद्धांत प्रकाश' मानव कल्याण के लिए अनुपम रत्न तो है ही, हिंदी साहित्य की दृष्टिसे भी काफी ऊंचा स्थान रखता है। इस पुस्तक में 60 अंग तथा 4 हजार के लगभग साखियाँ हैं। इसमें माया, मन और चेतावनी के अंग सिद्धांत हैं और यह साहित्य की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त 'नितानंद के भजन' व 'बारह खड़ी' नामक ग्रंथ भी काफी लोकप्रिय हैं।

हरियाणा में दादू पंथी साधना का अद्भुत प्रचार प्रसार देखने को मिलता है। यह साधु देश स्थान, वेशभूषा, रहन सहन आदि के आधार पर विभिन्न वर्गों में बंटे हुए हैं। हरियाणा का दादू पंथ उत्तराधा अथवा उत्तराड़ी के संतों के अंतर्गत आता है। हरियाणा में दादू पंथ के प्रचार और प्रसार में सबसे महत्वपूर्ण बाबा बनवारी दास हैं जिन्हें उत्तरायणी का सबसे महान संत गिना जाता है। हरियाणा से संबंधित दादू के शिष्य में केवल बाबा बनवारी दास की ही कुछ वाणी उपलब्ध हैं। हस्त लिखित रूप में बाबा बनारसीदास के तीन पदक तीन आरतियाँ हैं। श्री निश्चल दास जी की वाणी का संकलन श्री विचार ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हुआ है। इनकी एक और पुस्तक श्री वृत्ति प्रभाकर भी छप चुकी है। श्री अनाथ दास कृत विचार माला और श्री चतुरदास कृत भागवत एकादश स्कंध भाषा टीका अभी हस्तलिखित ही है। दादू पंथ का उल्लेखनीय योगदान उनकी निर्धनों के प्रति भरपूर सेवा है। दादू पंथ के संतों में हरिदास तथा निश्चल दास का विशेष महत्व है। माना जाता है कि बाबाहरिदास जीने बहादुरगढ़ के झरौंदा कलां में तपस्या की और तपस्या के पश्चात उन्हें प्रभु ने अपार शक्तियाँ प्रदान कीं। उन्होंने लगभग 600 साखियाँ लिखी है जिनमें प्रभु-प्रेम, हरि स्मरण, गुरु, सत्संगति, कुसंगति, गुणहीन व्यक्ति, अज्ञानी, शिक्षा आदि पर भी चर्चा की गई है। इनकी वाणी में अनुभूति की तीव्रता एवं अनुभव की प्रमाणिकता लक्षित होती है।

निश्चलदास

दादूपंथी संतो में निश्चल दास का प्रमुख स्थान है। वस्तुतः दार्शनिक तत्व चिंतन की दृष्टि से हरियाणा के मूर्धन्य विद्वान संत है। इनका जन्म 1707 में कुंगड़ ग्राम के छठ परिवार में हुआ। इन्होंने काशी जाकर स्वयं को ब्राह्मण बताया और संस्कृत भाषा, व्याकरण एवं दर्शन का गंभीर अध्ययन किया। इनके तीन ग्रंथ उपलब्ध हैं- विचार सागर, वृत्ति प्रभाकर एवं मुक्ति प्रकाश। विचार सागर दर्शन, वैराग्य एवं धर्म साधना संबंधी उत्कृष्ट ग्रंथ है। स्वामी विवेकानंद ने भारत में 300 वर्षों में लिखे गए किसी भी भाषा के ग्रंथों में इसे सर्वाधिक प्रभावशाली बताया है। इस ग्रंथ में ब्रह्म, जीव, जगत, माया का स्वरूप, गुरु शिष्य लक्षण, शुभ भक्ति फल, विनती, साधन, मिथ्या वर्णन, जीवनमुक्ति, विदेह मुक्ति आदि का प्रतिपादन, वेदांत, सांख्य, न्याय, अद्वैत दर्शन आदि के आधार पर विवेकपूर्ण एवं सरल शैली में किया गया है। अतः इस ग्रंथ में विचार तत्व की प्रधानता है और काव्य तत्व कम है तथापि वैराग्य आदि के वर्णन में मार्मिकता भी लक्षित होती है। ऐसे स्थलों पर शेष भाषा में विचारों का निरूपण किया गया है और उपमा और रूपक को दृष्टान्तों एवं उदाहरणों से उन्हें स्पष्ट एवं प्रभावशाली बनाया गया है।

निश्चल दास जी का कहना है कि विषय वासनाओं से वास्तविक आनंद प्राप्त नहीं होता। अनुभव और युक्ति के आधार पर इनकी निरर्थकता का प्रतिपादन किया गया है और तत्व चिंतन द्वारा वास्तविक आनंद की उपलब्धियों का मार्ग निर्दिष्ट किया है। उन्होंने संस्कृत भाषा में उपलब्ध अध्यात्म तत्व को हिंदी भाषा में सरल शैली में प्रस्तुत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया और सभी वर्गों को उस ज्ञान की उपलब्धि का अधिकारी बताया।

महाकवि भाई संतोख सिंह का हरियाणा के कवियों में सर्वोच्च स्थान है। वे राज्याश्रित कवि थे; किंतु उनके काव्य में संतमत के सभी तत्व उपलब्ध हैं। भाई संतोख सिंह का जन्म बोरिया में संवत् 1845 में हुआ था और इनका निधन 1900 में कैथल में हुआ। नाम कोश, गुरु नानक प्रकाश, गरब गंजनी टीका, बाल्मीकि रामायण भाषा तथा गुरु प्रताप सूरज उनकी प्रामाणिक रचनाएँ हैं। गुरु नानक प्रकाश गुरु प्रताप सूरज महाकाव्य हैं जिनमें क्रमशः गुरु नानक तथा अन्य सिख गुरुओं के जीवन, व्यक्तित्व तथा उनकी धार्मिक व सामाजिक विचारों का विशद वर्णन किया गया है। आध्यात्मिक विचारों तथा साधना पद्धति की दृष्टि से भाई संतोख सिंह गुरु मत का अनुकरण करने वाले निर्गुणवादी कवि हैं। उनपर पौराणिकता का भी प्रचार प्रभाव है और उन्होंने सिख मत प्रथा वैष्णव मत का समन्वय करने का प्रयास किया है। महाकवि भाई संतोख सिंह एक बहुश्रुत, बहुज्ञ एवं बहुदर्शी विद्वान थे। अपनी अद्वितीय मेधा, प्रखर काव्य प्रतिभा एवं अद्भुत कल्पना शक्ति के बल पर उन्होंने अपनी काव्य कृतियों का प्रणयन किया उनके ग्रंथों को मध्ययुगीन भारतीय धर्म, दर्शन, इतिहास एवं समाज का विश्वकोष कहा जा सकता है। उनके काव्य सांस्कृतिक चेतना, राष्ट्रीयता, सामाजिक आदर्श एवं मानवीय उदात्त से अनुप्राणित श्रेष्ठ काव्य कृतियाँ हैं जिनमें भावों की भी मार्मिक व्यंजना हुई है। ब्रह्म, जीव जगत, माया, कर्म, भक्ति, योग आदि का विस्तार से विवेचन करके उन्होंने सत्संगति, सेवा, हरि स्मरण, दया, परोपकार आदि का महत्व प्रतिपादित किया है तथा अंधविश्वास और रूढ़ियों, मिथ्याचारों, वर्णभेद, धार्मिक संकीर्णता, असत्य ज्ञान, पाखंड, अनीति, अन्याय और अत्याचार आदि का विरोध किया है।

भाई संतोख सिंह गुरु मत को मानने वाले थे; लेकिन उनका संबंध निर्मली पंथ से भी माना जाता है क्योंकि उनके काव्य में वैष्णव मत का भी पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है। निर्मली पंथ के कवि गुलाब सिंह का जन्म पंजाब में हुआ किंतु उन्होंने कुरुक्षेत्र में रहकर प्रौढ़ एवं प्रांजल भाषा में काव्य रचना की। इनकी छह रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिसमें भावनामृत

मोख पंथ प्रकाश, राम सीता आदि प्रमुख हैं। वह परब्रह्मवादी अद्वैत विचारक थे। उन्होंने औपनिषदिक शिक्षाओं को मानव कल्याणकारी माना है और इसी आत्म विद्या के माध्यम से मनुष्य की मोक्ष की बात की है। मनुष्य योनि ही सर्वोत्तम है; क्योंकि इसमें मनुष्य को आत्मबल और बुद्धि बल प्राप्त होते हैं। उन की मान्यता थी कि ब्रह्म व्यक्त हो या अव्यक्त उसकी सत्ता में तो कोई अंतर नहीं पड़ता। जब अव्यक्त ब्रह्म में श्रद्धा और प्रेम की पराकाष्ठा हो जाती है तो वह व्यक्त दिखने लगता है। कवि गुलाब सिंह अद्वैतवादी होते हुए भी निर्गुण सगुण समन्वय में विश्वास रखते थे। निर्मला पंत सनातन निगमागम को भी स्वीकार करता है और गुरु परंपरा तथा उनकी शिक्षाओं का अनुसरण करता है।

गुलाब सिंह त्यागी और वैरागी जीव थे। उन्होंने अपनी रचना में कहीं प्रभु से ऐश्वर्य, सुख भोग्या धन-धान्य की मांग नहीं की। इनका मध्यकालीन हिंदी साहित्य में अनूठा स्थान है। इन्होंने एक से अधिक संस्कृत के श्रेष्ठ ग्रंथों को भाषा अनुवाद के माध्यम से जनसाधारण के लिए सुलभ बनाया। हिंदी और संस्कृत पर उनका पूरा अधिकार था। इनकी अधिकतर उपलब्ध रचना कुरुक्षेत्र की पौराणिक धरती पर संपन्न हुई थी। रामकाव्य तथा औपनिषदिक रचना के क्षेत्रों में इन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की थी।

घीसापंथ के प्रवर्तक घीसा साहब एवं उनके शिष्य संत घीसा दास की वाणियाँ हरियाणा में बड़ी लोकप्रिय और प्रचलित हैं। साक्ष्यों के आधार पर बताया जा सकता है कि संत भीखा साहब जाति के जुलाहा थे। उनके परम शिष्य जीता राम का एक पद है -

मेरे मान मान्या है सतगुरु का नाम।
लोग कहे जुलाहा जुलाहा, मेरे दरश दहया दहया राम॥

घीसा दास जी ने ना तो स्वयं कोई क्रमबद्ध ग्रंथ लिखा ना ही किसी और से लिखवाया। वह समय-समय पर अपनी मौज से जिस वाणी आदि का उच्चारण करते थे, उसे उनके साथ रहने वाले संत लिखकर याद करते रहे। उन्हीं के द्वारा कुछ शब्द वाणियों का संग्रह सचित्र ग्रंथ साहिब में प्रकाशित हुआ है। घीसा पंत मे श्री अचलदास, श्री जीता दास, अवधूत नेकी राम जी, महंत दिलीप साह, महंत समंदर दास, तथा संत ईश्वर दास जी की विशेष मान्यता रही। घीसा संत परंपरा में संत ईश्वरदास द्वारा निर्धारित नैतिक मान्यताओं का विशेष प्रचलन है।

चरणदासी पंथ के प्रवर्तक श्री चरण दास जी की समस्त रचनाएँ भक्ति सागर ग्रंथ में प्रकाशित हैं। इस पंथ का बहुत सा साहित्य प्रकाशित हो चुका है। चरण दास जी के प्रमुख शिष्य राम रूप जी द्वारा रचित गुरु भक्ति प्रकाश, जोग जी द्वारा रचित श्री लील सागर तथा मेहंत गंगा कृत श्री श्याम चरण दास चरितावली तीनों ही प्रामाणिक रचनाएँ हैं। चरणदास का जन्म संवत् 1707 में पूरा ग्राम जिला अलवर के श्री मुरलीधर बनिया के घर हुआ था।

श्री गुरु भक्ति प्रकाश में महाराज चरण दास जी की प्रामाणिक जीवनी दी गई है। इसकी भाषा ब्रज है और सारी रचनाएँ दोहा तथा चौपाई छंदों में हैं। इसमें निर्गुण - सगुण ब्रह्म, माया, जीव बंधन, मोक्ष उपाय तथा अंत में ज्ञान से भक्ति की श्रेष्ठता को सहज सरल भाषा में बताया गया है। चरणदासी साधु ग्रहस्थ तथा विरक्त दोनों ही रूपों में मिलते हैं। रहे पीत परिधान की मान्यता है। संध्या प्रातः युगल मूर्ति के सामने आरती का नियम है। माला तिलक की अनिवार्यता है, तीर्थ-व्रत का विधान है। इस पंथ के प्रमुख स्थान दिल्ली और जयपुर हैं।

बादली निवासी संत इंद्राज द्वारा संस्थापित हरियाणा का कबीरपंथ अन्य कबीरपंथी संस्थानों से अलग है और एक स्वतंत्र पंथ है। संत इंद्राज (1868 से 1965 ईसवी) एक श्रमजीवी जाट कृषक थे। वह कबीर को गुरु रूप में स्वीकार करते हुए संतमत में अग्रसर हुए थे। यद्यपि इनका कोई साहित्य उपलब्ध नहीं है तथापि उनकी शिष्य परंपरा में कथनी और करनी की एकता का सम्मानित रूप इन के बहुआयामी प्रभाव को लक्षित करता है। कबीर पंथ में संत हरदेदास (1876-1959 ईस्वी) का बहुत सम्मान है। इनकी वाणी हृदय प्रकाश ग्रंथ में संकलित की गई है। महाराज हरदेदास की वाणी अर्थात् हृदय प्रकाश के दो भाग हैं। प्रथम भाग में 28 अंग सम्मिलित हैं। दूसरे भाग में ब्रह्म वेदी ककहरा, 16 तिथि, सात वार, शब्द, रेखते, मिश्रित तथा पत्र-व्यवहार सम्मिलित हैं। संत हरदेदास की शिष्य परंपरा में बाबा खूबीदास, रामरतन दास और दुर्गादास बहुत विख्यात हुए। सभी संतों के उपलब्ध साहित्य के अंतर्गत संत हरदेदास कृत हृदय प्रकाश, मार सागर दुर्गा दास कृत वाणी, सूर दास कृत पंथ, बाबा दूलनदास जी कृत वाणी, बाबा गिरधारी दास कृत वाणी, श्री माधव दास जी कृत इतिहास रति शोभा देवी, श्री आशा दास जी द्वारा गीत आनुवाद और श्री शीतल दास कृत भजन की चर्चा की जा सकती है।

बीसवीं शताब्दी के हरियाणा के संत साहित्य में संत मंगतराम (1903 से 1954 ई.) द्वारा प्रवर्तित समता पंथ का उल्लेख किया जा सकता है। मंगतराम जी कबीरपंथी साधु से प्रभावित हैं। समता संत कबीर की निर्गुण संत परंपरा का ही एक गौरवपूर्ण चरण माना जाता है। इस पंथ के विख्यात ग्रंथ क्षमता प्रकाश में भी मंगतराम जी की पद्य बंद वाणी संकलित हैं। इसी प्रकार श्री समता विलास श्री मंगतराम जी रचना करते हैं।

राधास्वामी पंथ इन दिनों अखिल भारतीय स्तर पर व्यापक प्रचार पाचुका है, विशेष रूप से हरियाणा में इसके अन्य केंद्र जनजीवन को काफी लंबे समय से आकर्षित करते आ रहे हैं। इस पंथ का प्रवर्तन आगरा में जनवरी, 1861 में स्वामी श्री शिव दयाल सिंह द्वारा किया गया था। राधास्वामी पंथ की अनेक शाखाओं में से व्यास शाखा का हरियाणा में प्रचार प्रसार हुआ है। बाबा जयमल सिंह, सावन सिंह, जगत सिंह तथा बाबा चरण सिंह इस शाखा के प्रतिनिधि संत हैं।

कबीर साहब की विचारधारा में आस्था रखने वाला साथ सम्प्रदाय पर्याप्त प्रसारित पंथ है। प्रायः विद्वानों ने साध और सतनामी पंथ को एक ही माना है। बेनामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत बेनामी जीका हरियाणा की 19वीं शताब्दी के बहुत प्रभावशाली संतों में उल्लेखनीय स्थान है। सम्प्रदाय की बेनामी बोध ग्रंथ के आधार पर बेनामी जी हरियाणा की सीमा के समीप कोसी ग्राम के निवासी थे। जाति के जाट और गोत्र भगवान था। ये भी एक प्रतिष्ठित परिवार से थे। इनकी समस्त वाणी बेनामी बुद्ध नामक ग्रंथ में संकलित है। बेनामी जीने साखियाँ, चौपाई तथा पद्य गद्य में जो रचनाएँ की हैं उनमें आल्हा शीर्षक के अंतर्गत ही लोक से महा शून्य तक की यात्रा का वर्णन है जो निर्गुण साहित्य में नितान्त दुर्लभ है। परमानंद पंथ के संस्थापक परमानंद जी एक खेतिहर किसान थे और बाद में पटवारी रहे। कुछ समय बाद विरक्त होकर भगवत भजन में लीन हो गए। श्री परमानंद जी के नाम से उनके शिष्यों ने दो पुस्तक छपाई। पहली पुस्तक हैं परमानंद ज्ञानानंद उदय सागर और दूसरा प्रकाशन हंस चेतावनी तथा परमानंद विलास है।

हरियाणा के संतों की उल्लेखनीय उपलब्धि यह है कि जब औपनिवेशिक दुरभिसंधि के तहत सांप्रदायिक विद्वेष चरम सीमा पर था, तब उन्होंने देहातों में हिंदू मुसलमान तथा अन्य धर्मों के मानने वालों को सौहार्द्रपूर्ण ढंग से निष्पक्ष आध्यात्मिक चेतना की सामर्थ्य पर एक सूत्र में बाँधे रखा। उनके ब्रह्म का स्वरूप ही अखिल मानवता को संबोधित करता था। उल्लेखनीय है कि हरियाणा के अधिकतर संत मूलतः जाट कृषक और शिल्पी अथवा श्रमजीवी समुदायों से संबद्ध रहे हैं। हरियाणा की विभिन्न जनपदों में प्रचार प्रसार करते हुए यह संत परस्पर श्रद्धा और सौहार्द्रपूर्ण विचारों का आदान-

प्रदान बनाए रहे हैं। हरियाणा के संतो के लिए भक्ति एक सांस्कृतिक विचारधारा थी, जिसके बल पर वह मानवीय प्रेम की नई आचार संहिता का निर्माण कर सके थे।

वस्तुतः अन्य संतो की भांति हरियाणा के संतो के अनुसार भी माया सहस्र धार नरक में ले जाने वाली है, आदमखोर, ठगनी, कुसंग, चंचल, चोरनी, कलंकिनी एवं पापिनी है। निश्चलदास आदि संतो ने माया के शास्त्रीय रूप की मीमांसा भी विस्तार से की है। कुछ संतो ने मोक्ष का निरूपण किया है। उनके अनुसार जीव और पीव का मिलन ही मोक्ष है। सिक्ख गुरुओं आदि की भांति जीवन-मृतक जीव का भी उल्लेख किया गया है।

संत कवियों ने गुरु महिमा, हरि भक्ति, नाम स्मरण, प्रभु प्रेम की पीड़ा, सत्य-असत्य, सत्संगति, विषय-वासना, अहंकार, लोभ, हिंसा, तृष्णा, कुसंगति के त्याग, संतोष, सदाचार, दया, क्षमा, परोपकार, विनय, कथनी-करनी की एकता, बाहर और भीतर की शुद्धता आदि कुछ अन्य विषय हैं जिन पर प्रकाश डाला है। सभी संतों ने आध्यात्मिक तत्व पर चिंतन की अपेक्षा साधना पक्ष पर अधिक बल दिया है।

उल्लेखनीय है कि देश के विभाजन तक हरियाणा प्रदेश में सूफियों की भी अनेक खानकाहें मौजूद रही हैं। हरियाणा में नारनौल, हांसी, कैथल, थानेसर, पानीपत तथा अंबाला सूफी सम्प्रदाय की गतिविधियों के प्रमुख केंद्र रहे हैं। नारनौल में मखदूम अम्मानउद्दीन गौरी, सय्यद ताजुद्दीन शेरसवार, काजी शमसुद्दीन शेवानी, शेख अमजद शेवानी, शेख हमज़ा धरसबी, इल्मुद्दीन हाजी, अलाउद्दीन, मोहम्मद तुर्क नारनौल जैसे जाने माने सूफी संत रहे हैं। हांसी में हजरत बाबा फरीद, शेख बुरहुनुद्दीन सूफी, शहाबुद्दीन, कुतुबुद्दीन मुनव्वर, नूरुद्दीन, शेख जमालुद्दीन हांसवी रहे हैं। पानीपत में मोहम्मद मौजूद दिलारी और हजरत बू अली कलंदर का साधना क्षेत्र था। शेख अमान पानीपती, शम्सुद्दीन तुर्क, शाह अली और सनाउल्लाह जैसे सूफी संतों का संबंध थी पानीपत से रहा है। थानेसर में मौलाना अहमद और जलाल थानेसरी की अध्यात्म वाणी गूँजती रही है। हिसार में जुनेद हिसारी, कैथल में सूफी बदनी, रोहतक में गुलाम जिलानी रोहतकी, सिरसा में अबू शकूर और अंबाला में शेख मोहम्मद अंबालवी तथा हजरत साई तवक्कुल शाह जैसे विख्यात सूफी संतों ने अध्यात्म का प्रचार प्रसार किया। यह सभी संत जनसाधारण की भीड़ में खो कर अपनी स्वतंत्र पहचान को जनता की पहचान में मिलाते थे और फारसी, ब्रज, बांगरू भाषाओं के परस्पर आदान प्रदान की प्रक्रिया में सेहत स्वाभाविक रूप से एक नई सहज प्रांजल भाषा को जन्म दिया।

हरियाणा में सूफियों के चिश्ती सम्प्रदाय का भी बहुत बोलबाला रहा है। इस सम्प्रदाय में भक्ति के श्रवण कीर्तन पक्ष को बहुत महत्व दिया जाता है। इनमें से बहुत कम रचनाएँ उपलब्ध हैं। यद्यपि यह कहना कठिन है कि हरियाणा से संबंध सूफी संतों में किस-किस ने कितना साहित्य रचना और किसने विशेष रूप से हिंदी भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, लेकिन इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यदि उस साहित्य को एकत्र किया जाए जो खानकाहों, दरगाहों, संग्रहालयों और लोगों के घरों में विस्मृत पड़ी है तो इस प्रदेश के सूफी कवियों की लंबी परंपरा प्राप्त होने की आशा है।

संदर्भ ग्रंथ:

1. हरियाणा का संत साहित्य, सूरज भान, हरियाणा साहित्य अकादमी
2. हरियाणा का हिंदी साहित्य
3. हरियाणा की साहित्य संपदा, डॉ. जयभगवान गोयल, आत्माराम एण्ड संस
4. भारत के महान संत - बलदेव वंशी
5. हरियाणा की निर्गुण काव्य परंपरा और संत नितानंद, कृष्णा कुमारी, हरियाणा साहित्य अकादमी
6. हरियाणा के प्रमुख हिंदी साहित्यकार, डॉ. लालचन्द्र गुप्त मंगल, आई.बी.ए. पब्लिकेशन्स



डॉ. धर्मचन्द चौबे, इतिहासकार

Prof. History, GD College, Alwar, Rajasthan

आज जिस 'ग्लोबल डाइमेंशन' के ऊपर यह चर्चा होने जा रही है उस विषय का प्रेरक देश भारत रहा है। भारत के खोज से भौगोलिक खोजें, फिर यूरोप में 'रेनेसां', 'रिफॉर्मेशन', 'इन्वेन्शन', 'इण्डस्ट्रियलाइजेशन' और आधुनिक पश्चिम का उदय तत्पश्चात् आधुनिक युग का प्रारम्भ हुआ। इस शोध पत्र में हम देखेंगे कि किस प्रकार भारत की खोज के बाद विश्व इतिहास में विकास की एक श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया (chain reaction) होती है।

ग्लोबलाइजेशन की इस गाथा को हम यहीं पर छोड़कर थोड़ी देर के लिए हम एशिया सेन्द्रिक होते हैं। भारत में प्रथम बार ग्लोबल होने वाले नृपतियों में प्रथम मौर्य चन्द्रगुप्त मौर्य का नाम अग्रणी है, जिसने ग्रीक सेनापति सेल्युकस निकेटर की पुत्री हेलेना से विवाह किया था और बदले में निकेटर ने ईरान, अफगानिस्तान और खोतान (दक्षिणी पश्चिमी चीन) को भारत में मिलाकर एक अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य की स्थापना की थी। औपचारिक रूप से चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज उसके दरबार में बरसों रहा और भारत पर आधारित इण्डिका नामक पुस्तिका लिखी थी। इससे इण्डिया शब्द का जन्म हुआ¹ था। इस साम्राज्य में यूरोप, भूमध्य सागर, अरब और चीन देश के कला विशारद मूर्तिकार, भाषाविज्ञानी और चिकित्सक आपस में ज्ञान विज्ञान का आदान-प्रदान किया करते थे। बाद में उसके पुत्र बिन्दुसार ने भी भूमध्यसागरीय देशों यथा सीरिया और मिस्र के साथ अपने सम्बन्ध बनाये रखे और सन्दर्भ मिलता है कि उसने उन देशों से मदिरा और दार्शनिक मंगवाये थे। केन चौधरी लिखते हैं कि भारत से हजार बहुमूल्य वस्तुएँ लेकर जहाज भूमध्यसागरीय देशों में जाते थे।²

आगे चलकर कुषाण राजा कनिष्क ने उत्तरी भारत, अफगानिस्तान, आँकसेस, बैक्ट्रिया और चीनी तुर्किमिनिस्तान को मिलाकर एक बड़े साम्राज्य का निर्माण किया। प्रथम शताब्दी ईस्वी से भारतीय विद्वान ग्लोबल होने लग गये थे। पश्चिमी एशिया में जहाँ देखिये वहाँ भारतीय व्यापारी और विद्वान छाये हुये थे। तक्षशिला का विश्वविद्यालय, बामियान और अफगानिस्तान का कूचा शहर विद्वानों के वैश्विक प्रसारक क्षेत्र बन गये। भारतीय विद्वानों ने अपनी मेधा और वैज्ञानिकता से दुनिया के मन पर अमिट छाप छोड़ी। विशाल चीनी सभ्यता ने भारतीय श्रीमंतों, भिक्षुओं, वैज्ञानिकों, गणितज्ञों, ज्योतिषियों, खगोलशास्त्रियों और भाषाविदों को अपने दरबारों और नगरों में संरक्षण दिया। ईसा की प्रथम सहस्राब्दी में हजारों भारतीयों को विभिन्न प्रकार की सेवाओं के लिये चीन देश में बुलाया गया था। तानचुंग जैसे विद्वान लिखते हैं कि भारतीयों ने चीन का कभी निर्माण किया था। सम्राट मिन्ग टी ने काश्यप मतंग और परमार्थ को चीन की राजधानी लोयांग (चंगन) में बुलाया था और ये दोनों श्रीमंत सफेद घोड़े पर बैठकर चीन पहुंचे थे। उनकी याद में वहाँ पर आज भी सफेद घोड़े का महाविहार बनाया गया है। इससे पहले अशोक ने बौद्ध धर्म और भारतीय उपनिषद् धर्म के सार को तार्किक ढंग से धम्म के रूप में सम्पूर्ण एशिया में प्रचारित एवं प्रसारित करवाया। इसी परम्परा को तीन सौ वर्ष बाद रोम

के ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म के प्रचार के लिये अपनाया। इस प्रकार ग्लोबलाइजेशन का प्रथम उदगाता देश भारत ही है।³

जब भारत का बौद्ध धर्म ग्लोबल हुआ तो उसके साथ साथ भारत का ज्ञान, भारत का विज्ञान, उपनिषदों के दार्शनिक विचार, परम्परा, रीति रिवाज और वैश्विक कल्याण की भावना भी चीन पहुंची थी। भारतीय भाषाविदों में कुमारजीव का नाम चीन में दसवीं शताब्दी तक राष्ट्रीय शिक्षक के रूप में लिया जाता रहा है। कुमारजीव भारतीय पिता और कुचा की राजकुमारी की सन्तान थे। वे महान विद्वान थे। उनको अपने दरबार में रखने के लिए मध्य एशिया के कई बौद्ध राजाओं ने संघर्ष किये। अन्त में वे चीन पहुंचे और उनको भारतीय ग्रन्थों का चीनी में अनुवाद का काम सौंपा गया। राजा ने अपनी बेटी और अन्य दरबारियों की पुत्री से 60 वर्ष की उम्र में उनका विवाह करवाया इस भाव से कि उनकी मेधावी सन्तानें आगे चलकर चीन देश की सेवा करेंगी। पांचवीं से नौवीं शताब्दी तक कुमारजीव के वन्शधरों एवं अन्य भारतीय अनुवादकों की सहायता से भारतीय ज्ञान विज्ञान और बौद्ध धर्म के ग्रन्थों के 7000 अध्याय चीनी भाषा में अनुवादित हुये।⁴

अब हम एशिया माइनर और भारत की चर्चा करते हैं और पश्चिम द्वारा भारत की खोज की रोमांटिक कहानी का प्रारम्भ करते हैं।

इतिहास के विद्यार्थी एवं अध्यापकगण इस बात से भली भाँति परिचित है कि एशिया माइनर में जब सुलतानों का प्रभुत्व स्थापित हो गया और सुलेमान 'महान ने भूमध्य सागर को सुलतान-शाही झील बना दिया⁵ और पूरब और पश्चिम के मिलन बिन्दुओं पर उस्मानी तुर्कों का आधिपत्य हो गया तत्पश्चात् सभ्यताओं में संघर्ष और सश्लेषण का काल प्रारंभ हुआ।⁶ 1453ई. में उस्मानी तुर्कों ने पश्चिमी बिजेंटाइन साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतुनिया पर आधिपत्य स्थापित कर लिया।⁷ अब तुर्क पूर्वी सभ्यता और यूरोपीय सभ्यता के विचारों और वस्तुओं के आदान-प्रदान में मध्यस्थ, नियंता और लाभार्थी हो गये। कुस्तुनतुनिया उस समय के विश्व का एक प्रमुख आर्थिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र बना हुआ था। 15वीं शताब्दी में योरोप के विद्वान अपनी प्रमुख पुस्तकों एवं अपनी पाण्डित्य की पोटली लेकर इसी नगर में जमें हुए थे। इस नगर से होकर पूर्वी देशों (भारत-चीन-जावा-सुमात्रा-बेर्निया), रोमन साम्राज्य एवं अरब देशों के मध्य व्यापार होता था। भारत कुषाण काल से तुगलक काल तक एक बड़े सभ्यतागत एवं दैनिक उपभोग की वस्तुओं के उत्पादक व वितरक देश के रूप में सम्पूर्ण दुनिया में अपनी धाक जमा चुका था। भारतीय पोतों व चीनी जंकों (विशाल जहाजों) में लेकर भारत व चीन के व्यापारी अपरिमित उपभोग की वस्तुएँ खाड़ी के देशों व वहाँ से रोमन साम्राज्य में जाते थे और अकूत संपदा (खासतौर से यूरोप से भारतीय लोग सोना और चीन के लोग चांदी लेकर आते थे) भारत और चीन की समृद्धि विश्व को चमत्कृत करती थी।⁸

कुस्तुनतुनिया पर आधिपत्य होते ही पूर्व और पश्चिम के बीच आवागमन अवरूद्ध हो गया। अफ्रीका और पश्चिम एशिया के इस मिलन बिन्दु से होकर दुनिया का समस्त व्यापार होता था और यह एकमात्र मार्ग था। आज इस स्थल को काटकर स्वेज नहर बना दी गई है। उस्मानी तुर्क इस आवागमन को 'स्केन' करते थे। भारत और चीन से योरोप जाने वाली उपभोक्ता वस्तुएँ बाधित होने लगी। कनिष्क और प्लिनी के जमाने से ही (प्रथम शताब्दी) योरोप के लोग काली मिर्च, ढाका के मलमल और स्त्रियों के प्रसाधन की सामग्री के दिवानगी की हद तक दिवाने थे।⁹ योरोप का पूरा समाज

मांसाहारी था और इसने जब से भारतीय और पूर्वी द्वीपों के मसालों को मांस में मिलाकर स्वाद लिया था तब से वे इसके आदी से हो गये थे। पूर्वी देशों से मसाले की आपूर्ति बंद होते ही वे पागल हो जाते थे। पांचवी शताब्दी में एहिला हूण ने रोम पर अधिकार कर उस नगर को विध्वंस करना प्रारंभ किया। उस लूट खसोट के समय नागरिक और सुंदर वनितायें उनके हवस के शिकार हो रहे थे। रोम के श्रेष्ठ नागरिकों ने एटिला से पूछा तुम क्या लेकर रोम को मुक्त करोगे। एटिला ने कहा चार सौ मन काली मिर्च और चार हजार थान (एक थान-27 गज) ढाका का मलमल लूंगा। संयोग से दोनों सामग्रियों को बन्दरगाह पर खड़े भारतीयों के जहाजों से खरीदकर एटिला को उपलब्ध कराया गया, तब जाकर उसने रोम को मुक्त किया।¹⁰ पश्चिम में भारतीय उपभोक्ता स्तुओं की धाक की एक ओर बानगी देखिए। एक कहानी के अनुसार एक बार रोम साम्राज्य की राजकुमारी ढाका में बने मलमल के सात तहों वाला काला गाउन पहनकर जब दरबार में पधारी तो दरबारियों ने आंखे बंद कर ली। उस झीने पारदर्शी दैवीय वस्त्र में से सुन्दर देहयष्टि वाली राजकुमारी का सम्पूर्ण कायिक सौंदर्य झाँक रहा था।¹¹ प्लिनी अपने 'नैचुरल हिस्टोरिका' में मलमल और रशमी वस्त्र धारण की हुई रोम की सुंदर वनिताओं की चर्चा करता है और क्षोभ व्यक्त करता है कि हजारों मन सोना भारत से उपभोक्ता वस्तुएँ खरीदने के लिए भारत चला जाता है।¹²

पर कुस्तुनतुनिया पर कब्जा होते ही यह मार्ग बन्द हो गया था। मार्को पोलो की 'ट्रैवल' नामक पूर्वी देशों पर यात्रा विवरण 16वीं शताब्दी में छापाखाना के आविष्कार के फलस्वरूप छपकर इटली, फ्रांस, स्पेन, हालैण्ड और इंग्लैण्ड में हलचल मचाकर रख दिया। रोम के लोग कूपमंडूक की तरह अपनी खोली को ही स्वर्ग समझ रहे थे। पर 'ट्रैवल' में मार्को पोलो ने साफ लिखा कि हमारी भौतिक और वैचारिक उपलब्धि चीन और भारत के सामने फीकी है। कुबलई खान के लकदक समृद्ध दरबार और चीनी सभ्यता की उपलब्धियों का इस बारीकी से बखान किया कि भूमध्य सागरीय देशों के लोग भारत और चीन जाने के लिए लालायित हो उठे। जेरूसलम और बेथलेहम पर आधिपत्य स्थापना के लिए उस्मानी तुर्कों और रोम के पोप के बीच लम्बा संघर्ष चला जिसमें ईसाई देश और पोप हार गए। पूर्वी योरोप और एशिया माइनर के युद्ध में बचे योद्धाओं ने पूर्वी देशों के बारे में ढेर सारी जानकारी लेकर आये। इसी बीच चीन से दिशा सूचक कम्पास भी योरोप पहुँचा।¹³ और इसी बीच धरती गोल है का जुमला योरोप में प्रचारित हुआ और इसी बीच भारत से रोम व योरोप का सीधा सम्पर्क कट गया। यूरोपीय विद्वान मैक इचरेन लिखते हैं कि अरबों ने चुम्बकीय सूई से दिशा ज्ञात करना चीनियों से सिखा था और अरब इसे लेकर यूरोप पहुँचे थे। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। योरोप के साहसिक नाविकों ने भारत और पूर्वी द्वीप समूह को जाने वाले वैकल्पिक मार्ग की तलाश में समुद्र की गहराई की परवाह किये बिना उसको पारकर भारत पहुँचने की कोशिश करने लगे। 15वीं एवं 16वीं शताब्दी के योरोप के पास एक ही लक्ष्य था - भारत को खोजो।¹⁴ उस भारत को जहाँ का मलमल श्रेष्ठ था, जहाँ के मसाले श्रेष्ठ थे और जिसके विचार श्रेष्ठ थे।¹⁵ रोम और वेनिस की मंगेतरों ने अपने होने वाले जीवनसाथियों से साफ कह दिया कि ढाका के मलमल निर्मित गाऊन में ही वे शादी के लिए चर्च में जायेंगी। जी. एलेन नामक पश्चिमी इतिहासकार लिखते हैं कि ढाका के मलमल की ग्लोबल डिमान्ड तो थी ही, रोम की मंगेतरों के लिये इस मलमल को एक ओंस सोने में एक ओंस मलमल ही मिलता था।¹⁶ एक मंगेतर ने कहा कि दूल्हा यह करार करे कि कालीमिर्च, बालछड़ और दाल चीनी और भारतीय गरम मसाले से निर्मित आमिष व्यंजन ही वह उसके परिजनों को खिलायेगा। कई दूल्हे नाविक बनकर अथाह सागर में उतर गये, इस संकल्प के साथ कि

वे भारत जायेंगे और वहाँ से ढाका का मलमल, कालीमिर्च और अन्य बहुमूल्य वस्तु अपनी दुल्हन के लिए लेकर ही लौटेंगे। और इस प्रकार से कई दुल्हे नाविक समुद्र के अथाह गहराई में समा गये। दुल्हने इंतजार करती रही पर वे लौट नहीं सके। ऐसा था मध्यकाल में भारत को खोजने का आकर्षण।¹⁷

उस्मानी तुर्कों ने भारतवर्ष से वेनिस और जेनेवा तक के विस्तार और आधिपत्य से रोमन साम्राज्य के कई नगर अपना वाणिज्यिक एवं सांस्कृतिक महत्व खो दिए। उस्मानी तुर्क योरोपीय और भारतीय व्यापारियों से व्यापार कम लड़ाई ज्यादा करते थे। स्थल मार्ग से गुजरने वाला कारवां व्यापार भी बर्बाद होने लगा तब इतालवी, स्पेनी, पुर्तगाली और नीदरलैण्ड के नाविक सीधे दिव्य वस्तुओं, मसाले, सूती और रेशमी वस्त्र के स्रोत (भारत) तक जाने वाले वैकल्पिक मार्ग की ओर बढ़ चले।¹⁸

योरोपीय साहसिक अब उस पथ के पथिक हो गए जो उन्हें भारतीय द्वीप समूह तक ले जाये। जहाँ यह देव-दुर्लभ 'श्यामा' (कालीमिर्च) बहुतायत में उगती थी। यह श्यामवर्ण की कालीमिर्च आगे चलकर भौगोलिक खोजों की एक मात्र प्रेरणा स्रोत बन गई। इसी बीच योरोप में राष्ट्र राज्यों के उत्थान का मार्ग प्रशस्त होने लगा। राष्ट्रीय सम्राटों ने साहसिक व्यापारियों एवं उद्यमियों को भारत की खोज में लगा दिया।¹⁹ धर्म युद्धों में ईसाईयों को करारी हार मिली पर उनके ज्ञान-विज्ञान में बढ़ोतरी से धार्मिक अंधविश्वास कम हो गया। पश्चिम की यात्रा करने से वे इसलिए डरते थे कि लोगों का मानना था कि अटलांटिक में कहीं-कहीं पर पानी खौलता है। समुद्री दानव घात लगाकर जहाज को निगल जाते हैं। पृथ्वी का अपरिमित विस्तार है। पर धर्मयुद्धों के दौरान योरोप-अरब-और पूर्वी देशों के परस्पर ज्ञान-विज्ञान और विचारों के आदान प्रदान ने इन भ्रान्त धारणाओं का निराकरण कर दिया और समुद्र यात्रा का मार्ग प्रशस्त होने लगा। पुर्तगाल के यशस्वी व साहसी राजकुमार हेनरी 'नाविक' ने स्वयं जिब्राल्टर को पार कर मूर-अरबों को पराजित किया। उसने अपने नाविक उद्यमियों को चेताया कि अगर इतालवी और अरबी बिचौलियों से मुक्ति चाहते हो तो दक्षिणी अफ्रीका का चक्कर मारकर भारत और चीन पहुँचो। हेनरी समझता था कि उसे इंडिया तक पहुँचने का ईश्वरीय आदेश हुआ है।²⁰ इंडिया तक पहुँचे बिना उसकी लौकिक कामनाओं की पूर्ति नहीं हो सकती। उसने कई नाविक दलों को भारत की खोज के लिए भेजा। जिन्होंने मडेरा एवं अजोर्स पर कब्जा जमाया। पर नाविकों को हेनरी के बताये आकार से अफ्रीका महादेश का आकार कहीं बड़ा निकला। इन खोजों में 1460 तक पुर्तगाल काफी आगे निकल चुका था। 1488ई. में बार्थोलोमा डियाज दक्षिणी अफ्रीका के सुदूर दक्षिण तक पहुँचा और उस स्थान का नाम 'केप ऑफ गुड होप' रखा गया। इस अभियान से उत्साहित होकर वास्कोडिगामा 1497 ई. में 'केप ऑफ गुड होप' का चक्कर लगाता हुआ एक अरब व्यापारी की सहायता से और फिर आगे एक भारतीय व्यापारी की सहायता से वह केरल के कालीकट बन्दरगाह पर उतरा। 1499ई. में जब वह अपने नगर लिस्बन लौटा तो जितनी पूँजी यात्रा व व्यापार में लगाई थी उससे 60 गुना धन भारतीय सामानों को बेचकर पुर्तगाल में कमाया।²¹

केरल के कालीकट को केन्द्र बनाकर पुर्तगालियों ने श्रीलंका, सुमात्रा, जावा, दक्षिणी पूर्वी एशिया के गरम मसाले उगाने वाले द्वीपसमूहों पर अपनी चौकियाँ स्थापित कर दी।²² अतिशीघ्र 1517ई. में पुर्तगालियों ने चीन सागर को

नापकर चीन के बन्दरगार कैन्टन तक जा पहुँचे और वहाँ से वे 1542 ई. में वे जापान पहुँच गये।²³ अन्य साहसिक व्यक्ति जैसे जिनेवा का क्रिस्टोफर कोलम्बस, जो यूरोप प्रसिद्ध नाविक था और विज्ञान और नौकायन में काफी रुचि रखता था, वह यूरोप से समुद्र में पश्चिम दिशा की ओर निकल गया। यह मानते हुए कि चीन और भारत पश्चिम में स्थित है। उसे विश्वास था कि वह पश्चिमी समुद्र में यात्रा करके वह भारत तक पहुँच जायेगा। इस यात्रा में खर्च अत्यधिक था इसलिए उसने स्पेन की रानी ईजाबेला से कर्ज लिये। अगस्त 1492ई. में वह अटलांटिक महासागर को पार कर एक द्वीप समूह पर पहुँच गया और उसे भारतीय द्वीपसमूह समझ लिया और उसे 'इंडिज' कहा।²⁴ जिसे हम आजकल वेस्टइंडीज के नाम से जानते हैं। उसके आगे के विशाल भूखण्ड को भारत समझ लिया जो आज का उत्तरी अमेरिका है। उसके एक वर्ष बाद अमेरिगो वेसुपुची ने उसे नई दुनिया कहा और अमेरिगो के नाम पर उस विशाल भूखण्ड का नाम अमेरिका पड़ा। कोलम्बस तीन बार यूरोप के व्यापारियों के साथ अमेरिका गया। उसने बहामा द्वीप समूह और कैरेबियाई द्वीप समूह की भी खोज की।²⁵ वहाँ के वासिन्दों को उसने इंडियन कहा पर कोलम्बस को न तो ढाका का मलमल मिला न लोंग मिली ना श्यामा काली मिर्च मिली। उसे अहसास हुआ कि यह भारत नहीं है। पर यूरोप के लोग अमेरिका में बसने लगे। इतिहास में कोलम्बस का नाम निर्धारित हो गया और यूरोप और अमेरिका के मध्य वाणिज्यिक और धार्मिक आदान-प्रदान का ऐतिहासिक दौर प्रारम्भ हो गया।²⁶

1500ई. में पुर्तगाली नाविक पेड्रो काब्राल भारत की खोज में निकला जब 'केप ऑफ गुड होप' पहुँचा तो पश्चिम की ओर बहने वाली एक तेज हवा ने उसे काफी दूर ले जाकर समुद्र के किनारे एक विशाल भूखण्ड पर पटक दिया। जब सुबह उसकी आँख खुली तो वह देश के भीतरी भागों में गया और इस प्रकार से उसने ब्राजील की खोज कर दी। 1503ई. में एक इतालवी नाविक ने जिसे फ्लोरेंस के मेडिची परिवार ने सहायता दी थी, अमेरिका गया और लेख लिखकर बताया कि कोलम्बस ने जिस द्वीप समूह की खोज की है वह इंडिया नहीं एक नई दुनिया है जो अब तक विश्व को अज्ञात थी। यह व्यक्ति अमेरिगो वेसुपुची था जिसके नाम पर अमेरिका का नाम पड़ा। उसीने आगे चलकर दक्षिण में लैटिन अमेरिका की खोज की। पर धरती गोल है और व्यक्ति जहाँ से यात्रा प्रारम्भ करे वहाँ पुनः आ सकता है की धारणा पूर्ण नहीं हुई थी और भारत की पूर्ण खोज बाकी थी। 1519ई. में कप्तान फर्डिनेण्ड मैगेलन ने स्पेन के राजा की सहायता से अपने पाँच जहाजों के साथ पृथ्वी का चक्कर लगाने चला।²⁷ उसने अटलांटिक को पार किया और लैटिन अमेरिका का पूरा चक्कर लगाता हुआ प्रशान्त महासागर में आ गया। अथाह समुद्र को लांघकर वह फिलिपिंस द्वीप समूह पर आ गया वहाँ के मूल निवासियों से उसकी लड़ाई हो गई और वह मारा गया।²⁸ उसका एक जहाज उस शानदार यात्रा की गाथा सुनाने के लिए 1522ई. में स्पेन के सेविल पहुँचा और इस प्रकार से किसी नाविक ने दुनिया का पूरा चक्कर लगाया। मैगेलन और कोलम्बस ने जो महान यात्राएँ की थी वह भारत की खोज के लिए की थीं। आगे के नाविकों ने 16वीं शताब्दी में भारत की खोज की और इस प्रकार से आधुनिक पश्चिम के उदय का मार्ग प्रशस्त हुआ।

क्या कभी इतिहास के पाठ्यक्रमों में पढ़ाया गया कि दुनिया की खोज या भौगोलिक खोजों के प्रेरणा स्रोत का केन्द्र क्या था। विद्यार्थियों को अब तक पाठ्यक्रमों में क्यों नहीं पढ़ाया जाता कि 15वीं शताब्दी में यूरोप के लोग उस श्रेष्ठ भारत को खोज रहे थे, जिसके विचार, विज्ञान और दिव्य वस्तुओं से यूरोप अपना साक्षात्कार कराना चाहता था। वे उस भारत को खोज रहे थे जिसका गणित, चिकित्सा और उपभोग की जाने वाली वस्तुओं का पूरा अरब और यूरोप दीवाना था। भारत

की खोज के बाद यूरोप को क्या मिला किसी इतिहासकार ने अपने विद्यार्थियों को बताया क्या ? अरब और यूरोप के लोग बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों वाले भारत को खोज रहे थे। जहाँ पर संसार के लिए नवीन ज्ञान और विज्ञान की निर्मिती होती थी। वे आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर, नागार्जुन, चरक और सुश्रुत के देश को ढूँढ रहे थे। जिस वैश्विक आयाम के ऐतिहासिक पक्षों पर यहाँ पर विचार हुआ है - उस ग्लोबलाइजेशन के मंत्र का उद्गाता और प्रेरक देश भारत है। 16वीं, 17वीं और 18वीं शताब्दी में यूरोप के लोगों ने हमारे ग्रन्थों में निहित ज्ञान और विज्ञान को आपनाया और उसी की बुनियाद पर उन्होंने आधुनिक पश्चिम का निर्माण किया।

References :

1. Mukherjee, Radha Kumud, Chandragupt Morya and His Times, MLBD, 1988, P. 38 ; Mc Keown, J.C. : Cabinet of Greek Curiosities : Strange Tales and Surprising Fact & from the Cradle of Western Civilization, Oxford, 2013, P.99
2. Talbert Richard, J.A. : Mercury's Wings : Exploring Modes of Communication in Ancient World, Oxford, 2017, P. 295
3. Sen, Amartya, Argumentative Indian, Allen, 2005, Pp. 47-48; Bapat, P.V. : 2500 Years of Buddhism, Publication Division New Delhi, 1997, Pp. 53-56
4. Tanchung (ed.), India and China : Indian Horizons, Vol. 43, No. 1-2, 1994, Pp. 16-17
5. Lock , Peter, Routledge Companion to the crusades, Routledge, 2006, p. 200
6. Davies, Norman, AHistory of Europe, Pimilico, 1997, P. 448
7. Lock , Peter, Routledge Companion to the crusades, Routledge, 2006, Pp. 201-202
8. Haw, Stephen G., Marcopolo's China : A Venetian in the Realm of Kubalai Khan, Routleds, 2006, P. 1; Arora, Namit, Marcopolo's India, Kyoto General 74, Silk Road Special, June, 2010
9. Young, Gary K., Rome's Eastern Trade, 2001, p. 25
10. Norwich, Byznantium, The Early Centuries, P.134
11. Khan, Maheen, The Story of Khadi Masleen, The Daily Star, 13 Dec., 2011; Dutt, Sukumar, Buddhist Monks and Monesties of India, G. Allen and Unwin, 1962, P. 132
12. Pliny, Natural History 12.14, Bostock and Riley's, 1855 Translation
13. Needham, Joseph, History of Science and Civilization, CUP, p. 173; Mc Eacherm, Jastin W., General Science Quarterly, Vol. 5-6, University of California Press, P. 337
14. Miller, J. Innes, The Spice Trade of the Roman Empire, Oxford, 1964, P. 80
15. Pannikar, K.M., Asia and Western Dominance, London, 1961, P. 22
16. Dutt, Sukumar, Buddhist Monks and Monesties of India, G. Allen and Unwin, 1962, P. 132
17. Riello, Giorgio and Roy, Tirthankar; How India Clothed the World : The World of South Asian Textiles, 1500-1850 AD, Brill, 2000 p.219
18. Pannikar, K.M., Asia and Western Dominance op.cit.p.29
19. Pannikar, K.M., Asia and Western Dominance op.cit.p.30
20. Pannikar, K.M., Asia and Western Dominance op.cit.25
21. Pannikar, K.M., Asia and Western Dominance op.cit. p.28
22. Pannikar, K.M., Asia and Western Dominance op.cit. 41
23. Pannikar, K.M., Asia and Western Dominance op.cit. 45
24. Morison, Samuel Eliot, Admiral of The Ocean Sea, The Life OF Columbus, 1942 Pp. 65-75
25. Forbes, Africans and Native Americans, 1993, p.22
26. De Lamar, Renaissance Europe : The Age of Recovery and Reconciliation, D. C. Heath, 1992 p.341
27. De Lamar, Renaissance Europe : The Age of Recovery and Reconciliation, D. C. Heath, 1992 p.349
28. Suarez , The early Mapping of South East asia, 1999, p.138

9

विटामिन-C, जो स्वास्थ्य के लिए बेहद जरूरी है

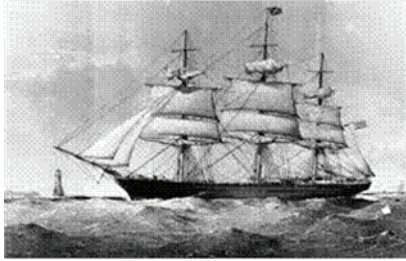


डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र

मानव स्वास्थ्य के लिए पोषक तथा संतुलित आहार बहुत जरूरी माना जाता है। संतुलित आहार के मुख्यतः 5 घटक होते हैं- कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, लिपिड, खनिज लवण एवं विटामिन। इनमें विटामिनों की बड़ी अहम भूमिका होती है। बाकी घटकों की तुलना में आहार में विटामिनों की अल्प मात्रा ही काफी होती है। ये यौगिक शरीर में उपापचय में अहम भूमिका निभाते हैं तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता को बनाये रखते हैं। विटामिन हमें फल तथा सब्जियों से प्राप्त होते हैं। इसीलिए हमारे खानपान में फलों तथा तरकारियों की बेहद खास भूमिका होती है। सभी विटामिनों में विटामिन-C सबसे अहम है जो आसानी से उपलब्ध होता है। यह प्रायः सभी खट्टे फलों में मिलता है। आंवले में यह प्रचुरता से मौजूद होता है। विटामिन-C को रासायनिक तौर पर L-एस्कॉर्बिक अम्ल कहा जाता है। यह एक उत्तम प्रतिऑक्सीकारक होता है। शरीर में उपापचय से उत्पन्न अभिक्रियाशील आक्सीजन स्पिशीज को यह निष्क्रिय करता है।

विटामिन-C का रोचक इतिहास

विटामिन-C, यानी एस्कॉर्बिक एसिड का बड़ा ही रोचक इतिहास है। इसके नाम की उत्पत्ति स्कर्वी नामक बीमारी के लैटिन नाम *स्कॉर्व्यूटिस* से हुई है। चूंकि इस विटामिन के जरिये स्कर्वी का उपचार



किया जाता है अतएव इसे विलोमार्थी रूप देने हेतु उपसर्ग रूप में अंग्रेजी का 'ए' अक्षर लगा दिया गया। पुराने जमाने में स्कर्वी की बीमारी लम्बी समुद्री यात्राओं पर जाने वाले जहाजियों तथा नाविकों में देखने में आती थी। इस बीमारी का कारण मुख्यतः कोलाजेन नामक रेशेदार प्रोटीन का अपूर्ण संश्लेषण होना है। इससे शरीर के अंग-प्रत्यंग ढीले पड़ने लगते हैं क्योंकि कोलाजेन उन्हें सीमेंट की तरह बांधने का काम करता है। विटामिन-C की कमी से जोड़ों में मौजूद कार्टिलेज कमजोर पड़ जाते हैं। आंतरिक रक्तस्राव, माँसपेशियों में कमजोरी, मसूड़ों में दर्द

तथा खून आना, दांतों का गिरना, जोड़ों में सूजन तथा दर्द, घावों का देर से भरना, इत्यादि, स्कर्वी के लक्षण हैं। सन् 1497 में पुर्तगाल के वास्को डी गामा ने जब भारत के लिए अपनी ऐतिहासिक समुद्री यात्रा शुरू की थी उस समय स्कर्वी नामक बीमारी के इलाज में खट्टे फलों की उपयोगिता मालूम हो चुकी थी। इसलिए पुर्तगालियों ने सेंट हेलेना में फलों और तरकारियों की खेती की व्यवस्था की थी। सेंट हेलेना तब उनकी समुद्री यात्राओं का एक महत्वपूर्ण पड़ाव हुआ करता था। यह दक्षिण अटलांटिक में स्थित एक द्वीप है। यहां वे स्कर्वी और अन्य समुद्री बीमारियों से पीड़ित नाविकों को उतार देते थे जहां से उन्हें लौटने वाले जहाजों से वापस उनके घर भेज दिया जाता था। उस समय पाल वाली नावें तथा जहाज इस्तेमाल में लाये जाते थे। समुद्री यात्राएं बड़ी लम्बी होती थीं तथा उनमें महीनों का वक्त लग जाता था।

ऐसा अनुमान है कि 1500 ई. से लेकर 1800 ई. के दरम्यान कुल 300 वर्षों में स्कर्वी के कारण कम से कम बीस लाख जहाजियों की मौत हुई थी। ध्यान रहे, उस समय हवाई जहाज का आविष्कार नहीं हुआ था। सुदूर देशों की यात्रा का माध्यम जलमार्ग ही हुआ करते थे। जोनाथन लैम्ब ने लिखा है; "1499 में, वास्को डी गामा जब भारत से अपने देश लौटा तो उसके दल के 170 नाविकों में से 116 नाविक स्कर्वी के कारण अपनी जान गवाँ चुके थे। इसी तरह सन् 1520 में मैगलन की लम्बी समुद्री यात्रा में उसके 230 नाविकों में से 208 नाविक स्कर्वी की भेंट चढ़ गये थे। सिर्फ 22 जहाजी ही जीवित बचे थे। इस तथ्य से हम इस बात की सहज कल्पना कर सकते हैं कि पुराने जमाने में समुद्री यात्राएँ कितना चुनौतीपूर्ण तथा जोखिमभरी हुआ करती थीं। वैसे स्कर्वी कोई नयी बीमारी नहीं है। इसका उल्लेख हिप्पोक्रेटीज़ (अ.460 ई.पू. – अ.380 ई.पू.) ने भी किया है जिन्हें पश्चिमी चिकित्सा विज्ञान का जनक कहा जाता है। अनेक स्थानीय समुदायों में स्कर्वी के लिए जड़ी-बूटियों के इस्तेमाल का जिक्र प्रागैतिहासिक काल से मिलता है।

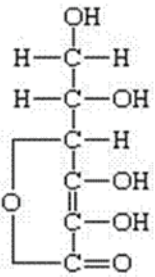
विटामिन-C की खोज



????????????

विटामिन-C की खोज करने का श्रेय हंगरी के जैवरसायनज्ञ अलबर्ट सेंट जॉर्जी (Albert Szent-Györgyi) को जाता है। उन्हें विटामिन-C के संदर्भ में साइट्रिक एसिड साइकिल तथा फ्यूमैरिक अम्ल के उत्प्रेरण के लिए वर्ष 1937 के चिकित्सा विज्ञान के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। विटामिन-C की महत्ता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वर्ष 1937 में इसकी रासायनिक संरचना ज्ञात करने के लिए वॉल्टर नॉर्मन हैवर्थ को रसायन विज्ञान का नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। यानी एक ही वर्ष में किसी रासायनिक यौगिक पर काम करने के लिए दो-दो नोबेल पुरस्कार दिए गए।

विटामिन-C जल में घुलनशील सफेद रंग का रवादार पदार्थ होता है जो स्वाद में खट्टा होता है। इसका अणु सूत्र



Vitamin C

$\text{C}_6\text{H}_8\text{O}_6$ है और अणुभार 176.12 ग्राम प्रति मोल होता है। विटामिन-C का द्रवणांक

190°C तथा क्वथनांक 553°C होता है। शुष्क अवस्था में यह हवा में स्थायी होता है, लेकिन द्रव अवस्था में इसका तेजी से ऑक्सीकरण होता है। जल में अत्यंत घुलनशील होने के कारण यह छोटी आंत द्वारा सरलता से अवशोषित हो जाता है। यह रुधिर से सीधे यकृत में पहुँचता है तथा वहाँ से शरीर के विभिन्न भागों में पहुँच जाता है। यदि इस विटामिन को ज्यादा मात्रा में ले लिया जाए तो भी यह पेशाब के जरिए सरलता से बाहर निकल जाता है। विटामिन-C ऐल्कोहॉल में कम घुलनशील तथा क्लोरोफॉर्म, ईथर और बेंज़ीन में अघुलनशील है। समस्त विटामिनों में यह सर्वाधिक अस्थायी

विटामिन होता है। विटामिन-C अन्य पोषक तत्वों जैसे विटामिन-A तथा आयरन के साथ मिलकर शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है और शरीर को स्वस्थ बनाए रखता है।

विटामिन-C के कुछ प्रमुख स्रोत



????????? ?? ??????

मनुष्यों को विटामिन-C अलग से खाद्य पदार्थों से प्राप्त होता है क्योंकि मानव शरीर इसका निर्माण नहीं करता। चूंकि विटामिन-C आसानी से आक्सीकृत भी हो जाता है इसलिए वायु की उपस्थिति में भंडारण करने, सब्जियों को काटने तथा पकाने से यह आक्सीकृत हो जाता है। एक व्यक्ति को प्रतिदिन औसतन 60 से 80 मिलीग्राम विटामिन-C की आवश्यकता होती है। गर्भवती महिलाओं तथा स्तनपान कराने वाली माताओं के लिए अतिरिक्त 10-30

मि.ग्रा. प्रतिदिन की आवश्यकता होती है। विटामिन-C के प्रमुख स्रोत हैं खट्टे रसीले फल, जैसे आंवला, नारंगी, नींबू, संतरा, अंगूर, टमाटर, अनानास, स्ट्रॉबेरी। खरबूजा, किवी फल, आम, अमरूद, तरबूज, सेब, केला, बेर, एवं हरी पत्तेदार सब्जियाँ आदि विटामिन-C के अच्छे स्रोत हैं।



इसके अलावा पालक, ताजा मटर, कटहल, शलजम, पुदीना, मूली के पत्ते, मुनक्का, दूध, चुकंदर, चौलाई, बंदगोभी, हरी धनिया, हरी और लाल मिर्च, ब्रोकली, फूलगोभी, मीठा और सफेद आलू, कद्दू और पालक भी विटामिन-C के अच्छे स्रोत हैं। दूध, अंडे, मांस एवं चिकन में एस्कॉर्बिक अम्ल अत्यल्प मात्रा में पाया जाता है। विभिन्न खाद्य पदार्थों में विटामिन-C की मात्रा नीचे सारणी में दी गयी है। इसके अलावा दालें भी विटामिन-C का स्रोत होती हैं। असल में सूखी अवस्था में दालों में विटामिन-C नहीं होता। लेकिन दालों के भिगोने के बाद उनमें अच्छी खासी

मात्रा में विटामिन-C उत्पन्न हो जाता है।

सारणी : खाद्य पदार्थों में विटामिन-C (एस्कॉर्बिक अम्ल) की मात्रा

खाद्यपदार्थ विटामिन-C की मात्रा

(मिग्रा./100 ग्रा.)

आंवला	445
अंगूर	200
बंदगोभी	100
फूलगोभी	70
पत्तागोभी	60
पालक	60
संतरा	50
नींबू	50
आलू	30
मटर	25
टमाटर	20
सलाद	15
गाजर	6
सेब	5
दूध	2.1

विटामिन-C : एक उत्कृष्ट प्रतिऑक्सीकारक तथा मुक्त मूलक मार्जक

प्रतिऑक्सीकारकों की सूची में विटामिन-C सर्वोपरि है। पारिभाषिक रूप से प्रतिऑक्सीकारक (antioxidants) वे रासायनिक यौगिक हैं जो दूसरे पदार्थों एवं तत्वों के ऑक्सीकरण को रोकते हैं। ये अभिक्रियाशील ऑक्सीजन स्पिशीज़ से अभिक्रिया करके उनको समाप्त करते हैं। प्रतिऑक्सीकारक शरीर में ऑक्सीकरण से उत्पन्न हुए मुक्त मूलकों से अभिक्रिया करके उनको निष्क्रिय बना देते हैं। आंवला विटामिन-C का उम्दा स्रोत माना जाता है। आंवले में मौजूद विटामिन तुलनात्मक रूप से स्थायी होता है तथा गरम करने पर जल्दी नष्ट नहीं होता। यह विटामिन यदि ज़्यादा मात्रा में ले भी लिया जाए तो भी उत्सर्जन तंत्र द्वारा पेशाब के जरिये इसका आसानी से परित्याग कर दिया जाता है। इससे किसी तरह

का कोई नुकसान भी नहीं होता है।

विटामिन-C की विशेषताओं पर बहुत व्यापक अनुसंधान हुए हैं। इसके गुणों पर आज भी शोध चल रहा है। अनुसंधान करने पर वैज्ञानिकों ने विटामिन-C के बारे में जो बड़ी रोचक बात पायी है वह यह है कि यह विटामिन, दूसरे विटामिनों की प्रतिऑक्सीकारक क्षमता को कई गुना बढ़ा देता है। जैसे कि विटामिन 'ई' मुक्त मूलकों को अपना एक इलेक्ट्रॉन देकर उनकी क्रियाशीलता समाप्त करता है परंतु स्वयं मुक्त मूलक में परिवर्तित हो जाता है। ऐसे में यदि साथ में विटामिन-C हो तो वह लगातार अपना इलेक्ट्रॉन देकर विटामिन 'ई' की क्रियाशीलता को सतत बनाए रखता है। विटामिन-C में यह अद्भुत विशेषता भी होती है कि वह पुनर्चक्रण द्वारा अपने इलेक्ट्रॉन की क्षतिपूर्ति भी कर लेता है।

विटामिन-C त्वचा के स्वास्थ्य में सुधार तथा कई अन्य महत्वपूर्ण फायदे दे सकता है। वैसे तो विशेषज्ञों के अनुसार विटामिन-C की प्रतिदिन 60 मिलीग्राम मात्रा का सेवन स्वास्थ्य के लिए अच्छा है पर शोध से यह भी सामने आया है कि जो व्यक्ति धूम्रपान करते हैं, उनके रक्त में विटामिन-C की मात्रा, धूम्रपान न करने वाले व्यक्तियों की तुलना में 25 प्रतिशत कम होती है। इसलिए जो लोग धूम्रपान करते हैं, ऐल्कोहॉल का सेवन करते हैं तथा कैफीन की अधिक मात्रा लेते हैं, उन्हें इसकी अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त मानसिक तनाव, बुखार, संक्रमण, गर्भावस्था और वृद्धावस्था में विटामिन-C की आवश्यकता बढ़ जाती है।

खुशमिजाज रखता है विटामिन-C

विटामिन-C हमें खुशमिजाज रखता है। यह हमारे चित्त यानी मनःस्थिति का निर्धारक है। यह मानव मस्तिष्क में सेरोटोनिन नामक रसायन के बनने में मददगार होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार

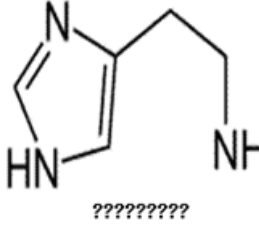


सेरोटोनिन हमारे मूड को तय करता है। सेरोटोनिन रासायनिक तौर पर 5-हाइड्रॉक्सीट्रिप्टामिन, (5HT) होता है। जैविक रूप से यह ट्रिप्टोफान नामक यौगिक से बनता है। रक्त में सेरोटोनिन का अच्छा स्तर व्यक्ति में प्रसन्नता के एहसास को बढ़ाता है। सेरोटोनिन निद्रा और भूख को भी नियंत्रित करता है। चिंता तथा अवसादग्रस्त व्यक्तियों के रक्त में सेरोटोनिन का स्तर कम पाया गया है। इसलिए प्रतिअवसादक (एंटीडिप्रेसैन्ट) औषधि के रूप में ऐसे रसायन दिए जाते हैं जो सेरोटोनिन के स्तर को बढ़ाते हैं। सेरोटोनिन का संज्ञानात्मक महत्व भी है। यह स्मृति तथा अधिगम को भी प्रभावित करता है। इसलिए छात्रों में

बेहतर सेरोटोनिन से उनके पठन-पाठन में अच्छा करने की संभावना बढ़ती है। विटामिन-C हमारी आंखों के लिए फायदेमंद होता है। यह सबलबाम (ग्लॉकोमा) जैसी खतरनाक बीमारी से बचाता है जिससे व्यक्ति अंधा हो जाता है।

विटामिन-C की प्रमुख भूमिकाएं

शरीर की आधारभूत रासायनिक अभिक्रियाओं तथा यौगिकों के निर्माण में विटामिन-C की भूमिका होती है। यह



कोशिकाओं के उपापचय अभिक्रिया में सहायक होता है। शरीर में विटामिन-C कई तरह की रासायनिक क्रियाओं में सहायक होता है जैसे कि तंत्रिकाओं तक संदेश पहुंचाना या कोशिकाओं तक ऊर्जा प्रवाहित करना आदि। इससे शरीर के विभिन्न अंग को आकार बनाने में मदद मिलता है। इसके अलावा, हड्डियों को जोड़ने वाला कोलाजेन नामक पदार्थ, रक्त वाहिकाएँ, लिगामेंट्स, कार्टिलेज के

निर्माण में भी विटामिन-C की आवश्यकता होती है। यह शरीर में कोलेस्टेरॉल को भी नियंत्रित करता है।

विटामिन-C के कारण शरीर में लौह तत्वों की अवशोषण क्षमता बढ़ जाती है। यह फेरिक आयन को फेरस आयन में रूपांतरित करता है जिससे आंत में लौह तत्व का अवशोषण सरलता से होता है। यह शरीर की रक्त वाहिकाओं को मजबूत बनाने में सहायक होता है। विटामिन-C की कमी से मसूड़ों से रक्तस्राव तथा दांत-दर्द की शिकायत हो सकती है, मसूड़े ढीले हो सकते हैं तथा इससे दांत कम उम्र में गिर सकते हैं। इसलिए व्यक्ति को खानपान में विटामिन-C नियमित तौर पर लेना चाहिए। जिन लोगों को उच्च रक्तचाप की शिकायत है उन्हें अपने आहार में रोज विटामिन-C लेना ही चाहिए। यह नसों और मासपेशियों को फैला देता है और उच्च रक्तचाप के संभाव्य नुकसान से रक्षा करता है।

विटामिन-C में प्रतिहिस्टामिनी (Antihistaminic) गुण होता है। इसलिए यह सामान्य सर्दी-जुकाम में औषधि का काम करता है। इसीलिए डॉक्टर सर्दी-जुकाम के इलाज में अन्य दवाओं के साथ विटामिन-C की गोलियां लेने की सलाह देते हैं। जीव तंत्र में रासायनिक प्रक्रियाओं से उत्पन्न होने वाले सुपरआक्साइड या मूलक शरीर में प्रोटीन व डीएनए को क्षति पहुंचाते हैं। इससे प्राणियों की कोशिकाओं में अनेक ऐसे परिवर्तन होते हैं जो कालान्तर में समयपूर्व जरण तथा कैंसर का कारण बन सकते हैं। विटामिन-C के समुचित तथा नियमित सेवन से कैंसर तथा जरण प्रक्रिया को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। यह शरीर में प्रतिरक्षी (एंटीबॉडी) बनाता है और रोगप्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करता है।

विटामिन-C की कमी से शरीर में संदूषण बढ़ जाता है एवं हानिकारक जीवाणुओं की संख्या बढ़ सकती है। इससे आंखों में मोतियाबिन्द, अपच, मंदाग्नि, घाव में मवाद बढ़ना, हड्डियां कमजोर होना, चिड़चिड़ा स्वभाव, खून का बहना, स्कर्वी, पक्षाघात, रक्त विकार, संधि शोथ तथा दर्द, श्वसन संबन्धी कष्ट, चर्म रोग, रक्ताल्पता, जैसी बीमारियां हो सकती हैं। इनके अलावा अल्सर, चेहरे पर दाग पड़ जाना, फ्रेफ्रडे कमजोर पड़ जाना, जुकाम होना, आंख, कान व नाक के रोग, ऐलर्जी होना इत्यादि होने की संभावना रहती है। शरीर में विटामिन-C की कमी होने से कभी चोट लगने पर अत्यधिक रक्तस्राव भी हो सकता है क्योंकि रक्त का थक्का बनने (सकंदन) की प्रक्रिया में भी यह अहम भूमिका निभाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि विटामिन-C एक अद्भुत यौगिक है तथा हमारे स्वास्थ्य और आरोग्य में उसकी अनेकानेक रूपों में भूमिका है। इसलिए आरोग्य तथा सर्वांगीण स्वास्थ्य के लिए हमारे खानपान में विटामिन-सी का शामिल होना बहुत जरूरी है।

प्रवासी भारतवंशियों का भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में योगदान



डॉ. सुनीता पाहूजा

केंद्र सरकार के राजभाषा विभाग, सहायक निदेशक

किसी भी देश की पहचान उसकी संस्कृति से होती है। देश के नागरिकों का खान-पान, रहन-सहन, उनकी वेशभूषा, उनकी भाषा, उनके रीति-रिवाज़, धर्म, दर्शन, कला इत्यादि में ही देश की संस्कृति प्रतिबिंबित होती है। भारत की संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति मानी जाती है।

भारत का एक अपार जनसमूह देश की सरज़मीं से दूर अनेक अन्य देशों में बसा हुआ है। इस समूह में वे लोग शामिल हैं जो भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से विभिन्न देशों में बसे हुए हैं – कुछ स्थायी रूप से और कुछ अस्थायी। इनमें से कुछ हाल ही के वर्षों में वहां जा बसे हैं और कुछ वे हैं जिनके पूर्वज अंग्रेज़ों द्वारा भारत से, कमोबेशी जबरन, ले जाए गए मज़दूर थे। इन सभी भारतवंशियों को 'प्रवासी' या 'डायस्पोरा' कहा जाता है।

भारत के लोग कब-कब और किन-किन देशों में जाकर बसे इसका सविस्तर वर्णन प्रख्यात समाज-भाषा वैज्ञानिक डॉ. सुरेंद्र गम्भीर जी ने अपनी संपादित पुस्तक 'हिंदी की कहानी' में कुछ इस प्रकार किया है :

“भारत से लोगों का दूसरे देशों में जा कर बसना कम से कम दो हज़ार वर्षों से चला आ रहा है। लगभग आठ समुदाय अलग अलग काल में भारत से जा कर दूसरे देशों में बस गए। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में तमिल-भाषी श्रीलंका गए, जिप्सी नाम से विख्यात रोमनी लोग ईसा पूर्व चौथी शताब्दी और ग्यारहवीं शताब्दी के दौरान अफ़गानिस्तान की तरफ़ से टर्की होते हुए योरोप, अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अमेरिका, न्यूज़ीलैंड, आस्ट्रेलिया में फैल गए। भारत मूल के लोग पांचवीं शताब्दी और फिर बीसवीं शताब्दी में इंडोनेशिया गए।

उन्नीसवीं शताब्दी में सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैंड, बर्मा, हांगकांग आदि, 1834-1917 के दौरान शर्तबंद श्रमिक मॉरिशस, रियूनियन, गयाना, त्रिनिदाद, सूरिनाम, ग्वाडालूप, फीज़ी, दक्षिण अफ्रीका आदि, उन्नीसवीं शताब्दी में पूर्वी अफ्रीका, उन्नीसवीं और बीसवीं

शताब्दी में नेपाल, और बीसवीं शताब्दी में योरोप, अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, न्यूज़ीलैंड, आस्ट्रेलिया आदि देशों में भारतीयों का भारत से विदेश-गमन और प्रवासन हुआ। सभी समुदायों ने अपनी संस्कृति के कुछ अवयवों का पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षण किया है। इन संरक्षित उपकरणों में हैं धर्म, खाना और मनस्पटल पर अंकित कुछ संस्कार। परंतु भाषा का उपकरण वे हर जगह नहीं बचा पाए”। (डॉ. सुरेन्द्र गंभीर, हिंदी की कहानी, 2017)।

हाल ही में मॉरिशस में आयोजित 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में भारत की विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने अपने

उद्घाटन संबोधन में कहा “भाषा और संस्कृति एक दूसरे से जुड़ी हैं। जब भाषा लुप्त होने लगती है तो संस्कृति के लोप का बीज उसी समय रख दिया जाता है”।

निस्संदेह, सुदूर बसे प्रवासी संस्कृति और भाषा दोनों के संरक्षण की दिशा में प्रयासरत हैं। तथापि यह भी सत्य है कि आधुनिक डायस्पोरा की स्थिति उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजों द्वारा भारत से, कमोबेशी जबरन, ले जाए गए भारतीय मज़दूरों से सर्वथा भिन्न है। गिरमिटिया मज़दूर या कुली कहे जाने वाले इन लोगों को प्रताड़ित और शोषित किया जाता था। बावजूद इसके, इनके वंशजों ने आज उन देशों में अपना सुदृढ़ स्थान बना लिया है। कठिन व कठोर परिस्थितियों का सामना करते हुए भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी, प्रगति की राह चलते हुए, इन भारतवंशियों ने भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार इतनी प्रबलता से किया कि आज इन देशों में भारतीय संस्कृति, सभ्यता और धर्म की ऐसी झलक देखने को मिलती

है कि भारत से दूर होते हुए भी इन देशों में भारतीयता की महक चहुं ओर महसूस की जा सकती है।

चाहे आधुनिक डायस्पोरा हो या वर्षों पूर्व विदेशों में जा बसे गिरमिटिया मज़दूरों के वंशज, ये सभी विश्व के विभिन्न भागों में रहते हुए भी अपने देश की सांस्कृतिक परम्पराओं को तो बखूबी निभाते ही हैं अपने प्रवास के देशों की धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक गतिविधियों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए वहाँ की परिस्थितियों पर भी सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। उन देशों के विकास एवं समृद्धि में इनका उल्लेखनीय योगदान रहता है। उनके ही योगदान को सम्मानित करने के उद्देश्य से वर्ष 2003 से हर वर्ष 7 से 9 जनवरी तक प्रवासी दिवस मनाया जाता है। 9 जनवरी को प्रवासी दिवस माना जाता है क्योंकि यही वह दिन है जब स्वाधीनता की खातिर गांधी जी वर्ष 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौट आए थे।

आज अनेक राष्ट्रों के शासकीय पदों पर भी भारतवंशी पदासीन हैं। 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के मेज़बान देश के राष्ट्रपति महामहिम अनिरुद्ध जगन्नाथ और प्रधानमंत्री माननीय रामगुलाम जैसे भारतवंशियों की लम्बी फ़हरिस्त है। त्रिनिदाद और टुबैगो की प्रधानमंत्री रह चुकीं श्रीमती कमला प्रसाद बिसेसर को पहली भारतीय महिला प्रधानमंत्री होने का गौरव प्राप्त है।

विश्वपटल पर भारत का परचम फहराने वाले अन्य लोगों की सूची में गूगल के सी. ई. ओ. सुंदर पिचाई से लेकर नोबल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक हर गोविंद खुराना और माइक्रोसॉफ्ट के सी. ई. ओ. सत्या नाडेला से लेकर विश्व के प्रसिद्ध ऑर्केस्ट्रा संचालक जैसे अनेक नाम शामिल हैं। यह सूची अनंत है। विश्व में भारत की संस्कृति का प्रसार करने वाले ये लोग विभिन्न क्षेत्रों से जुड़कर भी इस दिशा में कार्यरत हैं, चाहे वे फिल्म निर्माता हों, लेखक, गीतकार, संगीतकार, गायक, नाटककार, रंगमंचकर्मी, चित्रकार, फोटोग्राफ़र हों या फिर वे डॉक्टर, वकील या व्यापारी ही क्यों न हों। ये भारतवंशी समस्त विश्व में भारत का तिरंगा निरंतर ऊँचा करने के मार्ग पर अग्रसर हैं।

बहुल-संस्कृति देश होने के बावजूद भारत की प्राचीनतम व सामासिक संस्कृति अपनी सर्वांगीणता, विशालता, उदारता, प्रेम और सहिष्णुता जैसी विशेषताओं के कारण विश्व में एक अलग स्थान रखती है। प्रवासी भारतीय जिन देशों

में रहते हैं उन-उन देशों की संस्कृतियों के प्रभाव और भारत में पसर चुकी आधुनिकता के बावजूद भारत की संस्कृति, अपने समन्वयवादी और उदारतावादी दृष्टिकोण के चलते, लगातार समृद्ध ही हो रही है। भारतीय संस्कृति के इस वृक्ष पर कितने ही नव पल्लव उगते जाएं, इसकी परम्परा की जड़ें पोषित होती रहती हैं और अधिक मज़बूत ही होती जाती हैं।

मॉरिशस, गयाना, त्रिनिदाद, सूरीनाम, ग्वाडालूप, फीज़ी, दक्षिण अफ्रीका आदि वे देश हैं जहाँ बसे भारतवंशी गिरमिटिया मजदूरों की चौथी-पाँचवीं पीढ़ियां हैं। भारत से इन लोगों का जुड़ाव इतना गहरा है कि ये अपने-अपने आप्रवास के देशों को माँ का दर्जा देते हुए अपनी मदरलैंड कहते हैं तो भारत को दादी माँ मानते हुए ग्रैंडमदर पुकारते हैं। भारतीय संस्कृति मानो इन भारतवंशियों की रगों में खून की तरह दौड़ती है। उनकी आत्मा तो मानो भारत में ही बसती है।

इन सब का प्रत्यक्ष अनुभव मुझे तब हुआ जब त्रिनिदाद और टुबैगो द्वीप समूह की राजधानी पोर्ट ऑफ़ स्पेन में स्थित भारतीय उच्चायोग में द्वितीय सचिव (हिंदी एवं संस्कृति) के पद पर प्रतिनियुक्ति पर मेरा चयन हुआ और मुझे 3 वर्ष के लिए उस पावन भूमि पर रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वर्ष 2010 से 2013 के दौरान वहाँ रहते हुए मैंने स्वयं अनुभव किया कि क्यों वहाँ बसे भारतवंशी अपने देश को 'होम अवे ्रॉम होम' कहते हैं – मैंने बक्रायदा महसूस किया कि आप उस देश के किसी भी कोने में चले जाएँ आपका भारत में होने का अहसास बना ही रहेगा।

त्रिनिदाद और टुबैगो भी भारत की तरह बहुल-संस्कृति समाज है। देश के हर भाग में विभिन्न संस्कृतियों का संगम दिखाई देता है और यह सुखद अनुभूत आपको तब होती है जब आपको कई मील दूर बसे इस देश में सभी धार्मिक स्थल देखने को मिलते हैं फिर चाहे ये मंदिर हों, मस्जिद, गिरिजाघर या कि गुरुद्वारा..... ।

बात शुरू करते हैं मंदिरों से - 'टेम्पल इन द सी' समुद्र के बीचों-बीच बना एक ऐसा मंदिर है जो इस कहावत को सिरे से ही नकार देता है कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। विपरीत परिस्थितियों में भी कोई एक अकेला व्यक्ति कैसे असम्भव कार्य को भी संभव कर दिखा सकता है - यह मंदिर इसकी जीती-जागती तस्वीर है। औपनिवेशिक अधिकारियों और गन्ना-खेतों के मालिकों ने जब उस देश की ज़मीन पर मंदिर बनाने की इजाज़त नहीं दी तो शिवदास साधु ने समुद्र के बीच यह मंदिर बनाने का फ़ैसला कर लिया, वहाँ तो किसी की मिलकीयत थी नहीं! ग़रीब गिरमिटिया मजदूर शिवदास साधु साइकिल पर बाल्टी में पत्थर भर-भर कर ले जाते रहे और इस तरह खुद अकेले ही 25 साल में यह मंदिर तैयार किया जिसे आज उस देश के प्रमुख मंदिरों में से माना जाता है और सभी देशों के सैलानी इस अजूबे को देखने जाते हैं। इसका सुंदर-सा गुंबद और इस तक पहुँचने के लिए बनाया गया पुल साधारण होते हुए भी अत्यंत आकर्षक हैं और मंदिर के आस-पास और भीतर अत्यधिक शांत का अनुभव होता है।

त्रिनिदाद के अन्य प्रमुख मंदिरों में एक और मंदिर है 'दत्तात्रेय योग केंद्र, हनुमान मंदिर' जो करापिचाइमा में स्थित है। इसका अद्भुत सौंदर्य और नक्काशीदार संरचना देखते ही बनती है। यँ तो त्रिनिदाद और टुबैगो में भारतीय वास्तुशिल्प में उत्तर भारत (आर्य) की ही प्रधानता है तथापि हनुमान मंदिर दक्षिण भारतीय द्रविड़ वास्तुशिल्प की भव्यता का अद्भुत नमूना है। प्रवेशद्वार के दोनों ओर हाथी की दो विशालकाय मूर्तियाँ हैं। मंदिर के अंदर छत पर रंग-बिरंगी चित्रकारी और मूर्तिकाँ आपको अनायास ही आकर्षित करती हैं और आप गर्दन थक जाने के बावजूद अपनी नज़रें वहाँ से हटाना नहीं चाहते। ब्रह्मा, विष्णु और महेश - तीनों की ईश्वरीय शक्तियों से समाहित भगवान दत्तात्रेय के इस मंदिर की

संस्थापना संत श्री गणपति सच्चिदानंद स्वामी द्वारा वर्ष 1981 में की गई थी। वर्ष 1990 में मंदिर के साथ ही एक सार्वजनिक प्रार्थना कक्ष बनाया गया। जून 2003 में इसका और अधिक विस्तार किया गया। इसी वर्ष 9 जून को यहाँ हनुमान जी की 85 फुट ऊँची मूर्ति की स्थापना की गई जो पश्चिमी गोलार्ध में सबसे ऊँची मूर्ति है। हनुमान जी की एक अन्य विशालकाय मूर्ति डीगो मार्टिन के स्वाहा मंदिर में भी है। त्रिनिदाद में स्वाहा के अनेक मंदिर हैं।

मंदिरों की श्रृंखला में एक और खूबसूरत मंदिर है दक्षिण त्रिनिदाद के गेस्पेरिलो के हार्डबार्गेन में बना 'त्रिवेणी मंदिर'। तीन गाँवों की सीमाओं पर स्थित होने के चलते भारत में गंगा, जमुना और सरस्वती के संगम स्थल की तर्ज़ पर इसका यह नाम पड़ा। इसकी गगनचुंबी मीनारें इसकी सुंदरता में चार चाँद लगाती हैं।

भारत की तरह ही वहाँ भी सभी देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना की जाती है। देश के हर भाग में आपको मंदिर ज़रूर मिलेंगे, फिर चाहे वह राम मंदिर हो, शिव मंदिर, गणेश मंदिर, देवी का मंदिर, लक्ष्मी नारायण मंदिर या फिर कृष्ण मंदिर (इस्कॉन)। लगभग दो सौ के करीब मंदिर हैं। अनेक हिंदू समूह भी हैं जैसे सनातन धर्म महा सभा, स्वाहा, आर्य समाज, ब्रह्म समाज, चिन्मय मिशन, डिवाइन लाइफ सोसाइटी, इस्कॉन। युवा वर्ग भी सभी धार्मिक गतिविधियों में बढ़-चढ़कर रुचि लेता है जिससे समाज के निर्माण में नित नवीनता का संचार होता रहता है।

त्रिनिदाद और टुबैगो के लगभग हर क्षेत्र में मस्जिद और गिरिजाघर भी हैं। देश में 100 से अधिक गिरिजाघर हैं। त्रिनिदाद में 85 से अधिक मस्जिद हैं और टुबैगो में 2-3 हैं। देश में अनेक इस्लामिक संगठन भी हैं। ईद-उल-फितर के दिन सार्वजनिक अवकाश रहता है। ब्रह्मकुमारी आध्यात्मिक केंद्र हैं तो यहूदी और बहाई समूह भी।

भारत सरीखी 'विविधता में एकता' भी बखूबी देखने को मिलती है। किसी भी धर्म या समूह का कोई भी त्यौहार या उत्सव हो, जनसमूह में सभी शामिल होते हैं। त्यौहार कोई भी हो, माहौल देखकर किसी को भी यह भ्रम हो सकता है कि वह भारत के ही किसी कोने में है। मनाए जाने वाले त्यौहारों में प्रमुख त्यौहार हैं : दीवाली, फ़गवा (होली), रामलीला, कार्तिक स्नान, बसंत पंचमी, शिवरात्रि, गणेश चतुर्थी, होसे, ईद-उल-फ़ितर और ईद-उल-अधा।

देश में कार्निवल के बाद सबसे बड़े पैमाने पर मनाया जाने वाला दीवाली का त्यौहार देश के लगभग सभी भागों में मनाया जाता है, गाँवों में आज भी पारम्परिक तरीके से और शहरी इलाकों में कुछ बदले हुए रूप में। वर्ष 1966 में सरकार द्वारा सार्वजनिक अवकाश घोषित कर दिए जाने के बाद से तो यह एक राष्ट्रीय पर्व का रूप ले चुका है। नौ दिन तक चलने वाली रामलीला की समाप्ति के बाद दशहरा और दशहरे के बाद नौ रातों तक दीवाली के कार्यक्रम चलते हैं जिनकी शुरुआत हर शाम यज्ञ और कथा से की जाती है। 10वें दिन कार्तिक मास की अमावस्या को पूरे जोश-ओ-ख़रोश के साथ दीवाली मनाई जाती है - घरों में, आँगन में, चौबारों पर, सड़कों पर, पेड़ों पर-सच पूछो तो हर जगह नारियल के तेल के दिए जलाए जाते हैं -पूरा देश जगमगा उठता है। त्रिनिदाद की दीवाली का विशेषाकर्षण है बाँस पर जलते दिए! बाँस को लंबाई में चीर कर उसे अलग-अलग तरह के सुंदर आकार दिए जाते हैं और फिर उनमें दिए जलाकर रखे जाते हैं। इनकी छटा देखते ही बनती है। लो प्रकाश के इस उत्सव की सुंदरता का आनंद उठाने के लिए सड़कों पर पैदल या अपने वाहनों पर निकलते हैं। भारत की तरह ही शाम को माँ लक्ष्मी की पूजा की जाती है, तरह-तरह के पकवान बनाए जाते हैं, रिश्तेदारों और मित्रों के बीच मिठाइयों और उपहारों का आदान-प्रदान किया जाता है। प्रसाद, कुर्मा,

बर्फी, पेढा, लड्डू, जलेबी, गुलाब जामुन और खीर बनाकर बाँटे जाते हैं। रंग-बिरंगे कपड़ों, प्लास्टिक, गुब्बारों, बल्बों इत्यादि से घरों, दफ्तरों, मंचों की सजावट की जाती है, रंग-बिरंगी झंडियाँ लगाई जाती हैं।

वर्ष 1986 में शगुवानाज़ में एन. सी. आई. सी. (नेशनल काउंसिल ऑफ इन्डियन कल्चर) के तत्वाधान में दीवाली के कार्यक्रम आयोजित किए गए थे और इन्हें दीवाली नगर नाम दिया गया था। तब से नौ रातों तक चलने वाले ये विस्तृत कार्यक्रम एन. सी. आई. सी. द्वारा प्रायोजित किए जाते हैं, यहाँ तक कि एन. सी. आई. सी. और दीवाली नगर एक-दूसरे के पर्याय बन चुके हैं। मंच पर भारतीय नृत्य, संगीत आदि के अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं और देश के मंत्रीगण भी यहाँ अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं, प्रधानमंत्री द्वारा इस मंच से सारे देश को संबोधित किया जाता है। इस अवसर पर भारत से भी, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा, कलाकारों के समूह भेजे जाते हैं।

दीवाली नगर में अनेक स्टॉल लगाए जाते हैं जहाँ लोग भारतीय कपड़े, आभूषण, पर्सी, प्रसाधन सामग्री, खाने-पीने की चीज़ें और मिठाइयाँ आदि खरीदते हैं। हाथों में मेहंदी लगाने के स्टॉल पर भी भारी भीड़ देखी जा सकती है। देश के अलग-अलग हिस्सों से लगभग 20,000 लोग इन दिनों हर शाम दीवाली नगर आते हैं।

दीवाली की यह रौनक कोई बीस दिन पहले रामलीला की शुरुआत के साथ ही दस्तक दे देती है। त्रिनिदाद में 36 रामलीला समूह हैं जो मंच पर या मैदान में राम कथा का मंचन बड़े मनोयोग से करते हैं। रामलीला की प्रस्तुति में हर आयु, हर वर्ग के लोग बड़-चढ़ कर भाग लेते हैं। वर्ष 2007 में नेशनल रामलीला काउंसिल ऑफ़ त्रिनिदाद एंड टुबैगो ने 'त्रिनिदाद और टुबैगो में रामलीला के 127 वर्ष - एक यादगार' शीर्षक से एक पत्रिका निकाली थी जिसका उद्देश्य सभी 36 रामलीला समूहों को एक ही छाते के नीचे लाना था।

ये 36 समूह अश्विन मास के नवरात्रों में अलग-अलग दिनों पर देश के अलग-अलग भागों में रामलीला का आयोजन करते हैं जो आमतौर पर नवरात्रि के पहले शुक्रवार से शुरु होकर अगले 10 दिन तक चलती है। यह श्रीराम के जन्म से शुरु होकर, कथा के विभिन्न सोपानों को पार करती हुई आखिरी दिन रावण का पुतला जलाए जाने के साथ समाप्त होती है। देश के निवासी रामलीला को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास का माध्यम मानते हैं। उनका मानना है कि मन, शरीर और आत्मा - तीनों का विकास आवश्यक है।

भारत की तरह ही त्रिनिदाद में भी कार्तिक मास की पूर्णिमा गंगा स्नान के लिए प्रसिद्ध है। त्रिनिदादवासी भी इस पवित्र दिन से जुड़ी अनेक कथाओं में विश्वास करते हैं। भक्तजन स्नान करते हैं, कोई नदी न होने के कारण इस दिन समुद्र के जल को ही पवित्र मान कर उसी में स्नान किया जाता है और इसे वे जिह्वा सुख के लिए गंगा नहान या कार्तिक नहान कहते हैं। उनका मानना है कि इस पावन दिन पवित्र जल में स्नान करके उनके सभी पाप मिट जाते हैं। स्नान के बाद वे दीप दान करते हैं, और जल में पुष्प, अक्षत, दूध, सिक्के, शहद आदि प्रवाहित करते हैं। फिर ईश्वर की स्तुति में भजन गाए जाते हैं और मंत्रोच्चारण किया जाता है। इस दिन खाना, कपड़े, धन आदि का दान भी किया जाता है।

भारत की तरह ही त्रिनिदाद में भी होली या फ़गवा मार्च या अप्रैल माह में मनाया जाता है। भारत में इस समय बसंत ऋतु का आगमन होता है, वहीं त्रिनिदाद में भी मीलों तक फैले बड़े-बड़े पुई के पेड़ों पर चटख पीले और हल्के गुलाबी रंग

के मनमोहक फूल खिलते हैं। रंगों के इस पर्व पर सभी नगरवासी गीत, संगीत और नृत्य के कार्यक्रमों के बीच एक-दूसरे को अबीर और गुलाल लगाते हैं। चौताल गीत और पिचकारी गीत फ़गवा के विशेषाकर्षण रहते हैं। चौताल गीतों के साथ ढोलक और मंजीरा बजाए जाते हैं। चौताल गाने वाले समूहों के बीच प्रतियोगिताएँ भी होती हैं।

पिचकारी गीत हिंदु प्रचार केंद्र द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में प्रस्तुत किए जाते हैं। पिचकारी प्रतियोगिताएँ भी आयोजित की जाती हैं। दरअसल पिचकारी गीतों में समाज की वर्तमान परिस्थितियों पर टीका-टिप्पणी की जाती है। हिंदू प्रचार केंद्र के अध्यक्ष एवं ध्यात्मिक गुरु रवि जी द्वारा ईजाद की गई इस संगीत-कला में हिंदी, अंग्रेज़ी और भोजपुरी शब्दों का प्रयोग किया जाता है। सभी लोग इनमें बड़-चढ़ कर हिस्सा भी लेते हैं और इन प्रतियोगिताओं का आनंद भी उठाते हैं। हिंदू प्रचार केंद्र ने माखन चोर की भी शुरुआत की है, यह भारत में खेले जाने वाले 'दही हाँडी' की तर्ज़ पर है, इसके अलावा केंद्र द्वारा 'रंग बरसे' (रंगों की बरसात के बीच किया जाने वाला नृत्य), 'बच्चों के खेल' और 'सादा रोटी' प्रतियोगिताएँ भी शुरू की गई हैं।

महाशिव-रात्रि, गणेश-चतुर्थी, तुलसी-विवाह, कृष्ण जन्माष्टमी, रक्षा बंधन और हनुमान-जयंती इत्यादि जैसे पर्वों पर भी भारत की तरह ही विधिवत् पूजा-अर्चना की जाती है और मंदिरों की शोभ देखते ही बनती है। यदि भारत से दूर ऐसे पवित्र दिनों पर आपको इतना सुंदर धार्मिक वातावरण और ऐसे आयोजनों में शामिल होने का अवसर मिल जाए तो क्या आपको रत्ती भर भी यह महसूस होगा कि आप वास्तव में स्वदेश से मीलों दूर हैं?

ईद पर भी पूरी रौनक रहती है। यह दिन रमज़ान का महीना ख़त्म होने के बाद आता है, त्रिनिदाद निवासी इसे रमादान का महीना कहते हैं। सुबह सभी मुस्लिम भाई बड़ी संख्या में मस्जिद में, खुले मैदानों में, स्टेडियम में नमाज़ पढ़ने जाते हैं। फिर दिन-भर रिश्तेदारों और दोस्तों के घर आना-जाना, गले लगना, मिठाइयाँ बाँटना, ईदी देना जारी रहता है। सभी अल्लाह का शुक्रिया अदा करते हैं और एक-दूसरी की सलामती की दुआएं माँगते हैं। देश के सभी वर्गों के लोग जश्न में शामिल होते हैं।

त्रिनिदाद में होसे भी मनाया जाता है, यह मुहर्रम का ही स्थानीय नाम है। यह कोई त्यौहार नहीं है बल्कि एक मातम का दिन है। इस्लाम के पैगंबर मोहम्मद साहब के छोटे नवासे (नाती) इमाम हुसैन और उनके साथियों की शहादत की याद में मुहर्रम मनाया जाता है। 'हुसैन' शब्द का ही विकृत रूप है होसे। इस्लामिक कलेंडर के अनुसार मुहर्रम एक महीना है, जिसमें शिया मुस्लिम दस दिन तक इमाम हुसैन की याद में शोक मनाते हैं। यह शिया मुस्लिमों का अपने पूर्वजों को श्रद्धांजलि देने का एक तरीका है। पहले छः दिनों में रोज़े रखे जाते हैं और इबादत की जाती है। मुहर्रम के दस दिनों तक बांस, लकड़ी का इस्तेमाल कर तरह तरह से लोग 'ताजिया' सजाते हैं।

लोग इन्हें सड़कों पर लेकर पूरे नगर में भ्रमण करते हैं, साथ-साथ तासा ड्रम भी बजाए जाते हैं। तासा ड्रम भारत में बजाए जाने वाले ढोल जैसे होते हैं। सुंदर ताजिया दसवें दिन यानी आशुरा के दिन जल

में विसर्जित कर दिए जाते हैं। इन दिनों ताजिया लेकर जुलूस में शामिल होने वाले लोग माँस, शराब और अन्य व्यसनो से दूर रहते हैं। त्रिनिदाद में इस्लामिक लोगों के अलावा अन्य सभी समुदायों, धर्मों, जाति और वर्गों के लोग भी इसमें इकट्ठे होते हैं। होसे का सबसे बड़ा जुलूस देश की राजधानी पोर्ट ऑफ़ स्पेन से सेंट जेम्स में देखा

जा सकता है, इसके अलावा क्यूरेप, टूनापूना, कुवा और सेड्रोस में भी यह जुलूस निकाला जाता है।

सनातन हिंदू धर्म के अनुसार किए जाने वाले 16 संस्कारों में से त्रिनिदाद में मुख्यतः 5 संस्कार ही किए जाते हैं। नामकरण - यह जन्म के ठीक बाद किया जाता है, परंतु इसे उस समय गोपनीय ही रखा जाता है, इस डर से कि कहीं नवजात शिशु का कोई अनिष्ट न हो। गुरु दीक्षा - यह संस्कार 7 वर्ष की छोटी आयु में भी किया जा सकता है और कई लोग 31 वर्ष की आयु में भी गुरु धारण करते हैं। संभवतः इस संस्कार के लिए कोई आयु निर्धारित नहीं है। जनेऊ - 8 से 22 वर्ष की आयु के बीच बालक को पवित्र सूत पहनाया जाता है। इसे यज्ञोपवीत भी कहते हैं और यह बाएँ कंधे के ऊपर और दाहिनी भुजा के नीचे पहना जाता है। ज़्यादातर यह पंडितों के पुत्रों का ही किया जाता है।

विवाह संस्कार - यह सर्वाधिक लोकप्रिय है और आधुनिक रूप में 2 घंटों में केवल जयमाल करके ही पूरा कर दिया जाता है परंतु पारंपरिक रूप में सभी रीति-रिवाज़ पूरे करते हुए यह तीन दिन तक चलता है। विवाह

से तीन दिन पहले, शुक्रवार की रात 'माटीकोर' से समारोहों का प्रारंभ किया जाता है। इसमें दूल्हे या दुल्हन की बहन हथ में मिठाइयाँ लेकर परिवार की अन्य महिलाओं के साथ घर से चलकर किसी जलस्रोत तक जाती हैं। रास्ते भर तासा ड्रम (ढोल) बजता रहता है, सभी नाचते-गाते, मौज-मस्ती करते हुए बहते हुए जल के पास जाकर पूजा करते हैं और दूल्हा-दुल्हन के लिए शुभकामना करते हैं। घर लौटकर दुल्हन को मंडप में बैठाया जाता है जहाँ चावल और केले के पत्तों से वेदी बनी होती है, यहाँ दुल्हन को हल्दी लगाने की रीत की जाती है। इसी रात सभी महिलाएँ मेहंदी भी लगाती हैं। शनिवार की रात 'किंग नाइट' कहलाती है। सभी औरतें मिलकर उस रात और अगले दिन के लिए खाना बनाती हैं। साथ ही दुल्हन की बुआ द्वारा आग पर चावल भी भूने जाते हैं जो विवाह के समय पवित्र अग्नि में अर्पित

किए जाते हैं। मस्ती, नाच-गाना सब साथ-साथ चलता रहता है।

विवाह के दिन भी हिंदू रीति के अनुसार सभी परंपराएँ निभाई जाती हैं। बारात आने पर उसके स्वागत में दोनों पक्षों के पुरुष और पंडितों की मिलनी होती है, पंडितजन मंत्रोच्चारण करते हैं, दुल्हन का

पिता दूल्हे के पिता को जल से भरा लोटा, सिक्के, फूल और आम के पत्ते देकर बारात का स्वागत करता है। इसे बारात मिलन कहा जाता है। इसके बाद दूल्हे का स्वागत किया जाता है जिसे परिचय कहा

जाता है। इसके बाद द्वार पूजा जिसमें आरती और फिर दूल्हे का तिलक किया जाता है। तत्पश्चात् दुल्हन को मंडप में बैठाया जाता है, इमली घोटार्ई की रीत के बाद भगवान गणेश और माँ लक्ष्मी की पूजा

की जाती है। इसके बाद दाल संकल्प, पीढा संकल्प, मधु परख, अंग स्पर्श, कन्यादान, गठबंधन, पाणिग्रहण, पाँव पूजा, हवन, अग्नि परिक्रमा, सप्त पदी (सात फेरे), अश्व रोहण, सूर्य दर्शन, हृदय स्पर्श सब विधिवत् किए जाते हैं। दूल्हा व दुल्हन एक-दूसरे को सात-सात वचन देते हैं। फिर जयमाल, सिंदूरदान, मुद्रिका प्रतिदान, मंगलसूत्र दान, ताग पट के बाद विवाह रजिस्टर पर हस्ताक्षर किए जाते हैं। मंत्रों के बीच दूल्हा-दुल्हन पर चावल और फूलों की वर्षा करके दोनों को आशीर्वाद दिया जाता है। कुछ देर के लिए मंडप से बाहर जाकर दूल्हा-दुल्हन फिर लौट आते हैं तो सभी को खीर परोसी जाती है। उपहार आदि भेंट किए जाते हैं। अंत में दूल्हा सबके पाँव छूता है, सबसे आशीर्वाद लेता है और फिर

दुल्हन की विदाई कर दी जाती है। अगर आप तीन दिनों तक चलने वाले इस विवाह समारोह में शामिल हों तो पल भर को भी आपको भारत में ही होने का भ्रम होने लगेगा।

अंतिम संस्कार है - मृत्यु होने पर किया जाने वाला - अंत्येष्टि- मनुष्य का अंतिम संस्कार! मृत्यु के दिन शरीर को अग्नि के सुपर्द कर दिया जाता है। हर माह कुश घास और जल से तर्पण किया जाता है और 11वें या 12वें माह में भण्डारा किया जाता है।

त्रिनिदाद के कण-कण में व्याप्त भारतीय संस्कृति आपको यह अहसास कभी होने ही नहीं देगी कि आप भारत से कोसों दूर हैं। यदि किसी कारणवश आप अपने निवासस्थल से बाहर नहीं निकलते तो भी आपको ऊब या खिन्नता नहीं होगी। देश के 5 रेडियो स्टेशनों पर 24X7 हिंदी गाने, भजन और कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। हिंदी / भारतीय संगीत और गीतों के अलावा पण्डितों और इमामों द्वारा धार्मिक व्याख्याएँ भी प्रसारित की जाती हैं। सेहत और खान-पान संबंधी कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं, दैनिक और साप्ताहिक भविष्यफल भी बताए जाते हैं, श्रोताओं द्वारा अपने रिश्तेदारों और दोस्तों आदि को जन्मदिन और वर्षगाँठ की शुभकामनाएँ भी दी जाती हैं और अन्य सामुदायिक घोषणाएँ भी प्रसारित की जाती हैं।

टेलीविज़न पर हिंदी चैनल बकायदा चलते हैं और हिंदी फिल्मों, गीतों के कार्यक्रमों और धारावाहिकों के तो अधिकतर लोग दीवाने हैं। आप पलभर को भी अपने पसंदीदा गीतों या कार्यक्रमों की कमी महसूस नहीं करेंगे। घर से बाहर जाकर फ़िल्मों का आनंद उठाना चाहें तो भी सोचने की कोई बात ही नहीं - तीन सिनेमा-घरों (मूवी टाऊन) में हिंदी फिल्में भी दिखाई जाती हैं।

भारतीय मूल के लोगों द्वारा विवाह-समारोहों तथा अन्य सामाजिक पर्वों पर वही हिंदी / भोजपुरी लोक-गीत आज भी गाए या बजाए जाते हैं जो उनके पूर्वज अपने साथ लाए थे। यँ तो भारत से आए गिरमिटिया मज़दूर अपने साथ शुद्ध भारतीय शास्त्रीय संगीत भी लाए थे। बाद में इंडो-त्रिनिदाद शास्त्रीय संगीत भी एक अलग रूप में विकसित हुआ। प्रो. हरिशंकर आदेश द्वारा स्थापित शुद्ध भारतीय शास्त्रीय संगीत की शिक्षा देने वाली पहली संस्था भारतीय विद्या संस्थान में आज भी यह शिक्षा बदस्तूर दी जाती है। आज कई अन्य संगीत विद्यालय भी हैं जैसे संगीत महाविद्यालय और शिव संगीत स्कूल ऑफ़ म्यूज़िक। पंडित मंगल पटेसर, शिवानंद महाराज और डेक्स्टर रघुनानन जैसे व्यक्ति जिन्हें भारत में आकर संगीत सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उन्होंने देश लौटकर संगीत सिखाने का बीड़ा उठा लिया।

त्रिनिदाद एवं टुबैगो विश्वविद्यालय (यू. टी. टी.) में डॉ. रूबी मलिक, श्री राना मोहिप और श्री प्रशांत पटेसर द्वारा संगीत की शिक्षा दी जाती है। भारतीय उच्चायोग के तत्वाधान में महात्मा गाँधी सांस्कृतिक केंद्र द्वारा भी नियमित रूप से संगीत और नृत्य की कक्षाएँ आयोजित की जाती हैं।

भारत सरकार और त्रिनिदाद एवं टुबैगो सरकार के बीच तय किए गए 'सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम' (सी. ई. पी.) के तहत भारत से भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा त्रिनिदाद में कलाकारों के समूह भेजे जाते हैं जो भारतीय उच्चायोग और महात्मा गाँधी सांस्कृतिक केंद्र के समन्वयन से त्रिनिदाद के भिन्न-भिन्न हिस्सों में सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। देश में अन्य भी अनेक धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाएँ हैं जो हिंदी और भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए कार्यरत हैं और समय-समय पर सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करती हैं। इन सभी कार्यक्रमों में अधिकांश महिलाएँ भारतीय वेशभूषा में, यानी साड़ी या सलवार-सूट पहनकर गौरान्वित महसूस करती हैं।

30 मई का दिन भी कमोवेशी एक त्यौहार की तरह ही मनाया जाता है। सभी मिलकर याद करते हैं वर्ष 1845 का वह दिन- 30 मई - जब फतह-अल-रज़ाक नामक जहाज़ पर 230 भारतीयों का पहला समूह 103 दिन की समुद्री यात्रा तय करके इस ज़मीन पर पहुँचा था। कठिनतम परिस्थितियों के बीच भी यहाँ पहुँचे सभी भारतीयों ने आज तक अपनी संस्कृति का हर वो पहलू संजो कर रखा है जिसे वे अपने साथ लाए थे - इन्होंने इस देश की संस्कृति को बहुत कुछ नया दिया था - खान-पान, संगीत शैली, गीत, नृत्य, वनस्पति, धार्मिक ग्रंथ, धर्म व संस्कृति के नए आयाम।

21 मार्च, 1917 को ब्रिटिश संसद द्वारा गिरमिटिया प्रथा की समाप्ति की औपचारिक घोषणा के सौ वर्ष पूरे होने पर मार्च, 2017 में त्रिनिदाद में आयोजित 'भारतीय डायस्पोरा – विश्व सम्मेलन' में देश की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती कमला प्रसाद बिसेसर (भारतीय मूल की पहली महिला प्रधान मंत्री) ने इसी बात को संज्ञान में लेते हुए कहा कि हमें गर्व है कि हम आज यहाँ हैं और आज हमने यहाँ अपनी जगह खूब बना ली है। वे हमेशा गर्व के साथ ट्रिनिडाद व टुबैगो को माँ का और भारत को दादी माँ का दर्जा देती हैं।

इसी सम्मेलन में देश के वर्तमान प्रधानमंत्री डॉ. कीथ राऊली ने अपनी बात रखते हुए कहा कि 1917 में जब गिरमिटिया प्रथा समाप्त हो गई और अधिकांश मज़दूरों ने इसी देश में रहने का फ़ैसला

कर लिया तो यह एक अच्छी बात हुई, इसके लिए यह राष्ट्र सदैव उनका आभारी रहेगा। (पारस रामावतार)

देश में एक भारतीय-कैरेबियाई संग्रहालय भी है जिसमें गिरमिटिया मज़दूरों द्वारा लाया सामान आज भी सुरक्षित रखा हुआ है, इनमें शामिल हैं कुछ तस्वीरें, दस्तावेज़, किताबें, चित्रकारी, पुराने वाद्य यंत्र, कृषि संबंधी औज़ार जिन्हें वे कोको, कॉफ़ी और गन्ने के खेतों में इस्तेमाल किया करते थे और रसोई घर में काम आने वाले बर्तन।

भारतीय संस्कृति से सराबोर इस देश में अगर आपके कोई कमी खटकेगी तो वह है - बोलचाल में हिंदी भाषा - इसके अभाव का अहसास तो आपको इसकी ज़मीं पर पाँव रखते ही हो जाएगा। यह अभाव अत्यंत स्पष्ट तौर पर हृदय को कचोटता है। लेकिन यह स्थिति अकारण नहीं है। देश की राजभाषा अंग्रेज़ी है और विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक कारणों से और अन्य जन-

समूहों के प्रभाव के चलते अधिकतर बोलने-सुनने को अंग्रेज़ी क्रियोल ही मिलती है जिसमें हिंदी भाषा के शब्दों की भरमार है फिर भी हिंदी वहाँ बोलचाल की भाषा नहीं है। स्पैनिश और फ्रेंच द्वितीय भाषाओं के रूप में स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं लेकिन हिंदी को वहाँ की सरकार की ओर से यह दर्जा नहीं दिया गया है। देश के सामाजिक-धार्मिक संगठनों के प्रयासों के परिणामस्वरूप कुछ स्कूलों में हिंदी सिखाई तो जाती है लेकिन यह केवल धार्मिक शिक्षा के लिए निर्धारित पीरियड तक ही सीमित रहती है।

हिंदी का प्रचार-प्रसार करने वाली अनेक संस्थाएँ त्रिनिदाद एवं टुबैगो में हैं जैसे हिंदी निधि, वेस्ट इंडीज़ विश्वविद्यालय, भारतीय विद्या संस्थान, पंडित परसराम स्कूल ऑफ हिंदुइज़्म, सनातन धर्म महासभा इत्यादि। लगभग सभी मंदिरों में हिंदी की कक्षाएँ चलाई जाती हैं जिनमें 'स्वाहा' मंदिरों और स्कूलों की भूमिका उल्लेखनीय है। भजनों, गीतों और मंत्रों आदि के ज़रिए हिंदी का ज्ञान बढ़ाने के प्रयास किए जाते हैं। अनेक धार्मिक संगठन जैसे हिंदू प्रचार केंद्र, कबीर पंथी, चिन्मय मिशन, एन. सी. आई. सी. (नेशनल काउंसिल ऑफ इंडियन कल्चर), आर्य प्रतिनिधि सभा में

नियमित तौर पर आयोजित की जाने वाली धार्मिक गतिविधियाँ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी के शब्द-भंडार को समृद्ध बनाती रहती हैं। यह और बात है कि ये शब्द वाक्यों में परिवर्तित होकर बातचीत का रूप कम ही ले पाते हैं।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (आई. सी. सी. आर.), भारत सरकार द्वारा वेस्ट इंडीज़ विश्वविद्यालय के 'सेंटर फॉर लैंग्वेज लर्निंग' में हिंदी शिक्षण के लिए एक हिंदी पीठ की व्यवस्था है। यहाँ हिंदी की कक्षाएँ नियमित रूप से चलाई जाती हैं। हिंदी सिखाने के लिए दृश्य-श्रव्य उपकरणों का सहारा लिया जाता है और हिंदी गीतों और टी. वी. धारावाहिकों के ज़रिए हिंदी सिखाई जाती है।

देश की राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन में स्थित भारतीय उच्चायोग भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका निभाता है। भारतीय उच्चायोग के तत्वाधान में महात्मा गाँधी सांस्कृतिक केंद्र में तथा देश के विभिन्न भागों में स्थित केंद्रों में हिंदी की कक्षाएँ चलाई जाती हैं और वर्ष के अंत में परीक्षा आयोजित करके प्रमाण-पत्र भी दिए जाते हैं। इन कक्षाओं में सभी आयु-वर्ग के लोग आते हैं। अर्धेड उम्र के अनेक लोग भी रामायण आदि पढ़ने के लिए हिन्दी सीखने में रुचि रखते हैं। इन कक्षाओं में केवल भारतीय मूल के ही नहीं अपितु अफ्रीकी और यूरोपीय मूल के लोग भी हिंदी सीखने आते हैं। हिंदी दिवस और विश्व हिंदी दिवस समारोह में सभी हिंदी सीखने वालों को हिंदी में कविताएँ, गीत या अपने अनुभव सुनाने का मौका दिया जाता है। इनके अलावा भारतीय उच्चायोग द्वारा समय-समय पर 'फिल्म फेस्टिवल' भी आयोजित किए जाते हैं जिनमें हिंदी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं की फिल्में भी दिखाई जाती हैं।

त्रिनिदाद-निवासी हिंदी सीखते तो बहुत शिद्ध के साथ हैं, पर वो ज़बा बोलचाल में कहीं दिखाई नहीं देता। हिंदी यूँ तो दुकानों के नामों में भी मिलेगी – रफी रोटी शॉप। सड़कों और जगहों के नाम जैसे फैज़ाबाद, कलकत्ता स्ट्रीट, पटना स्ट्रीट भी हैं। पर मिलेगा सब रोमन में लिखा हुआ, फिर भी हिंदी तो है ही। इतना ही नहीं अधिकतर लोगों के नामों में भी भारतीय नाम मिलेंगे – सरस्वती, रामचरण, रेणुका, राधिका, जानकी, लछमी इत्यादि। इनके अलावा रोज़मर्रा के इस्तेमाल के शब्द जैसे खाना, पानी, भाई, लोटा, यज्ञ, दुल्हन, गाना; रसोईघर में इस्तेमाल किए जाने वाले कुछ शब्द जैसे चूल्हा, चटनी, कुचला (अचार), दाल, भात आदि; और पोशाकों एवं आभूषणों के हिंदी नाम युवाओं की ज़बान पर सहज ही रहते हैं। नाना-नानी आज भी नाना-नानी ही हैं और दादा-दादी को आज-आजी कहकर ही पुकारा जाता है।

कुछ धार्मिक क्रियाकलापों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में, खासतौर पर संगीत के कार्यक्रमों में तो पूरी की पूरी कार्रवाई हिंदी में की जाती है और दर्शकगण, बहुत कुछ न समझने के बावजूद, मंत्रमुग्ध होकर उसका आनन्द लेते रहते हैं – यह उनका हिंदी प्रेम ही तो है!

हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति को पोषित करने के उद्देश्य से काम कर रहे भारतीय उच्चायोग और महात्मा गाँधी सांस्कृतिक केंद्र द्वारा सभी सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा भारत के स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस जैसे राष्ट्रीय पर्व भी मनाए जाते हैं जिनमें भारतीयों के अलावा त्रिनिदाद एवं टुबैगो के सभी निवासी सार्वजनिक तौर पर आमंत्रित होते हैं। गुरु रविंद्रनाथ टैगोर तथा महात्मा गाँधी जैसे महापुरुषों की जयंती और पुण्यतिथि पर भी कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इस तरह के वातावरण का हिस्सा बनकर कोई भी भारत की आत्मा को वहाँ मसूस कर सकता है और अनायास ही कह उठता है - होम अवे फ़ॉम होम! - निस्संदेह! भारत से दूर एक छोटा भारत जहाँ भारतीय संस्कृति हर दिशा में सजीव रूप में पसरी हुई है।

भारतीय संस्कृति पर बदलते काल और बदलते जीवनमूल्यों का प्रभाव



डॉ. प्रो. तंकमणि अम्मा

पूर्व डीन, प्राच्य अध्ययन संकाय, केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनन्तपुरम

यद्यपि संस्कृति शब्द अपने विशाल अर्थ में विश्व संस्कृति अथवा विराट् मानव संस्कृति को अपने में समेटनेवाला होता है तथापि हर देशवासी अपने देश की संस्कृति पर विशेष गर्व का अनुभव करता है। इक्कीसवीं शती के दूसरे दशक के अंतिम दौर में खड़े होकर तीव्रगति से बदलते परिवेश में अपनी संस्कृति के अतीत, वर्तमान और भविष्य की ओर दृष्टिपात करना अत्यंत दिलचस्प विषय रहेगा। वर्तमान भूमण्डलीकृत समाज में खड़े होकर आम भारतीय नागरिक जब अतीत की स्मृतियाँ करेगा, वे सुनहली स्मृतियाँ उसे भारतीय सांस्कृतिक गरिमा की महिमामय गाथाओं की ओर ले जाएँगी। विश्व के अन्यान्य राष्ट्रों ने जब सभ्यता और संस्कृति की सीढियाँ चढ़ना आरंभ किया था, तभी भारतवर्ष ने आर्षज्ञान की ज्योति जगाकर विश्व को अन्धकार से आलोक की ओर ले जाने का मार्ग दिखाया था। यही कारण है कि भारत विश्वगुरु' कहलाया गया। भारतीय ऋषि मुनियों ने विश्व को तम से ज्योति की ओर तथा असत् से सत् की ओर ले जाने का मंत्र दिया--

"तमसो मा ज्योतिर्गमय असतो मा सद्गमय"

भारतीय संस्कृति का यह मूलमंत्र है। "वसुधैव कुटुंबकम्" की परिकल्पना भी आर्ष भारतीय संस्कृति की ही देन है।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे भवन्तु निरामयः" -- भारतीय मनीषा का ही उद्गार है। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी खूबी भारत के वैविध्य में विद्यमान अनोखी एकता है जो एक विशिष्ट आध्यात्मिक स्रोत से अभिषिक्त है। भौगोलिक, प्राकृतिक, आचार-विचार, वेष-भूषा एवं भाषापरक इन्द्रधनुषी विविधताओं में भी परिलक्षित इस अनोखी एकता की भावना भारतीय संस्कृति की सबसे अनूठी संपदा है जो समस्त भारत और भारतवासियों को एक शामियाने के नीचे खड़ा कर देती है। प्राचीन काल से ही भारत अपने इस अनूठे तत्व को अक्षुण्ण बनाये रखने में प्रयत्नशील रहा है। भारतीय साहित्य, कलाएँ, तीर्थ, पर्व आदि इसके संप्राण प्रमाण प्रस्तुत करनेवाले हैं।

आसेतुहिमाचल "एक देश-एक जनता" की परिकल्पना पहले से ही भारतवर्ष में कायम थी। "विष्णुपुराण" में उल्लेख है-

"उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणं
वर्षं तत् भारतं नाम भारती यत्र संतति"

अर्थात् समुद्र के उत्तर की ओर तथा हिमाद्रि के दक्षिण की ओर जो प्रदेश है वह भारत है तथा वहाँ की जनता उसकी संतानें हैं। भारत के दक्षिणी छोर में स्थित कन्याकुमारी की वह चिरकुमारी उत्तर की ओर मुँह किए उस महादेव को पाने के लिए तपस्या कर रही है जो उत्तरी छोर में स्थित हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर समाधिस्थ है। गंगोत्री का जल रामेश्वरम् के शिवशंकर को अर्पित होकर ही पुनीत बन जाता है। किसी भी आस्तिक भारतीय का यह स्नान मंत्र-

"गंगेश्च यमुने चैव गोदावरि च सरस्वति

नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु" -- भी प्रतीक रूप में यह प्रकट करता है कि भारत की सांस्कृतिक विरासत एक है। इस प्रकार के न जाने कितने ही विश्वास भारतीय जन-मानस में रूढमूल हैं। "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" का तत्व सभी भारतवासियों के सिर-आँखों पर है। केरल राज्य की भाषा मलयालम के प्रख्यात कवि वल्लत्तोल् नारायण मेनन का उद्गार है--

"भारतमेन्न पेर केट्टाल् अभिमान-
पूरितमाकणमंतरंगम्
केरलमेन्नु केट्टालो तिलय्क्कणं
चोरा नमुक्कु जरंपुकलिल्।"

अर्थात् "भारत" का नाम सुनते ही हमारा अन्तर्मन गर्व से भर उठे। केरल का नाम सुनते ही हमारी सिराओं में खून उबल उठे। समस्त भारतीय भाषाओं के कवियों और साहित्यकारों ने भारत देश और भारतीय संस्कृति की गरिमा का यशोगान किया है।

सदियाँ गुज़र गईं। बदलते युग के अनुकूल जन-जीवन में भी परिवर्तन आये। अठारहवीं सदी के मध्यकाल से अंग्रेज़ों ने भारत-विजय का प्रयास शुरू किया और उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ तक वे भारत के सर्वेसर्वा बन गए। इस दौरान राजा राम मोहनराय, स्वामी दयानन्द आदि के सामाजिक-धार्मिक आन्दोलनों ने संपूर्ण राष्ट्र में नव चेतना का संचार किया। रामकृष्ण परमहंस तथा उनके वरिष्ठ शिष्य विवेकानन्द ने भारतीय संस्कृति की गरिमा की वाणी देश-विदेशों में बुलन्द की। बीसवीं शती में भारतीय राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में अमिट छाप छोड़नेवाली हस्ती के रूप में महात्मा गाँधी उपस्थित हुए। भारतीय संस्कृति के अमर तत्व अहिंसा को कर्मक्षेत्र में लाकर उसे कार्यान्वित करने का सफल प्रयास उन्होंने किया। उनके सत्याग्रह तथा अहिंसात्मक आन्दोलन के सामने अंग्रेज़ों ने हार मान ली। सदियों की दासता के उपरांत भारत को जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई वह भारतीय सांस्कृतिक चेतना की जीत का जीता जागता प्रमाण ही है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत में लोकतंत्र शासन की शुरुआत हुई। स्वतंत्र भारत ने शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में काफी प्रगति प्राप्त की है किंतु जाति और धर्म के विषैले बीज, गन्दी दलबन्दी, प्रांतीयता, सांप्रदायिकता, आतंकवाद तथा तमाम क्षेत्रों में व्यस भ्रष्टाचार ने देश की संस्कृति को घोर प्रहार पहुँचाया है।

बीसवीं शती के अंतिम दशकों तक पहुँचते-पहुँचते भारतीय जनजीवन में भारी बदलाव प्रकट हुए। जीवनाचार में आये परिवर्तनों ने जीवन-मूल्यों में भी बदलाव उपस्थित कर दिये। सूचना-प्रौद्योगिकी के अभूतपूर्व विकास ने भारतीय जन-जीवन को एकदम प्रभावित कर दिया। भूमंडलीकरण अथवा वैश्वीकरण जोकि वास्तव में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का समुच्चय है, उसका प्रभाव हमारे जीवन के बाहरी और भीतरी दोनों पक्षों पर पड़ा है। भारतीय संस्कृति जो सदैव से सर्वग्राही और सर्वसमावेशी रही है, वह इस नई संस्कृति की चकाचौंध के सामने लड़खड़ा उठी है। यही कारण है कि अब हम एक अजनबी स्थिति से गुज़रने को विवश हो रहे हैं जिस स्थिति में हम पुरातन से पूरी तरह मुक्ति पाने में तथा नएपन को पूरी तरह से ग्रहण करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। भूमंडलीकृत संस्कृति ने देश और देशवासियों की पारस्परिक दूरी को एकदम मिटा दिया है। लेकिन देश की सांस्कृतिक अस्मिता क्षयग्रस्त हो रही है। भूमंडलीकरण के वैश्विक गाँव (विश्वग्राम) तथा "वसुधैवकुटुंबकम्" की पुरानी अवधारणा में आकाश-पाताल का अंतर है। वसुधैवकुटुंबकम् प्रेम और मैत्री पर आधारित रहा था तो "वैश्विक ग्राम" अर्थ व्यवस्था और उपभोक्तावादी संस्कृति पर आधिष्ठित है। विश्व के अन्याय राष्ट्रों के समानांतर भूमंडलीकरण की जो आँधी भारत में भी जड़ जमा चुकी है, उसने हमारे जन, जनजीवन, दृश्य-श्रव्य माध्यम, सब पर अपना प्रभाव डाला है जिससे हमारी संस्कृति भी आक्रांत है।

हमारे घर, परिवार, वैवाहिक संबन्ध, अन्य मानवीय संबन्ध सभी में परिवर्तन आया है। संयुक्त परिवार का विघटन और अणु परिवार के जन्म ने भारतीय पारिवारिक संबन्धों में दरारें पैदा कीं। घर की संकल्पना, केवल मकान में बदल गयी। पिता-पुत्र संबन्ध, पति-पत्नी संबन्ध आदि ढीले पड़ गये जिसके फलस्वरूप घर-परिवार में नारी उत्पीडन की समस्या विवाह-विच्छेद की समस्या तथा वृद्ध समस्याएँ उभर कर आई हैं। विस्थापन से जुड़ी समस्याएँ भी भूमंडलीकृत समाज की एक अहं समस्या है। तथाकथित सभ्यता के मोहजाल में फंसकर हमारी नई पीढ़ी अपने चरित्र और मानवीय गुण को भूल रही है। यह उसे विनाश की ओर ले जाएगा। प्रेमचन्द ने सही लिखा है--"जिस राष्ट्र में चरित्रशीलता नहीं है उसमें कोई योजना काम नहीं कर सकती।" राजनीति जो त्याग और बलिदान की पावन भूमि समझी जाती थी अब भ्रष्टाचारों का अखाड़ा बन गयी है। भ्रष्ट राजनीति राष्ट्र और राष्ट्रीय संस्कृति का विनाश कर डालती है। बायरन का यह कथन अक्षरशः सही है कि "एक हज़ार साल भी मुश्किल से एक राष्ट्र बना पाते हैं किंतु वही राष्ट्र एक घंटे में समाप्त हो जाता है।" गौर से देखा जाए तो भ्रष्ट राजनीति के लिए दोषी मात्र नेतागण नहीं, हर मतदाता उसके लिए उत्तरदायी है।

सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्र की चरित्र हीनता को मिटाने के लिए सारे भारतवासियों को एक साथ आगे बढ़ना चाहिए। देश की एकता, अखंडता और समन्वयकारी संस्कृति को बनाये रखने का दायित्व सभी देशवासियों पर निर्भर है। एक छोटा सा चिराग भी जिस प्रकार अंधकार को मिटाने का दायित्व अपने ऊपर उठा लेता है उसी प्रकार साधारण से साधारण व्यक्ति भी संस्कृति के संरक्षण के भार को अपने कंधे पर उठा सकता है। अपनी संस्कृति के संरक्षण में ही मानवता की भलाई निर्भर होती है। इक्कीसवीं शती की मानव जाति के भविष्य के प्रति चिंतित होकर मलयालम की लब्धप्रतिष्ठ कवयित्री सुगतकुमारी ने गाया है--

"नमस्कार! नमस्कार!
 हे तेजोमय महोदय-
 सहर्ाब्द महामूर्ते!
 तेरा मुख हो जावे सौम्य
 अंधकार-सागर के तरंग-शिखरों पर
 तेरी कृपा उषः सूर्य शोभा ज्यों दमक उठे।
 दुःख तप्त, महाभीत यह भूमि अंजलिबद्ध हो खड़ी है
 उसकी रक्षा करें, निज करों से पोंछ ले उसके आँसू
 नमस्कार, नमस्कार, प्रभामय, दयामय
 सहर्ाशब्दमूर्ते, हमारी रक्षा करें।"
 अपनी प्रार्थना को कवयित्री आगे बढ़ाती है--
 "एक ही विनती, आगे इस मिट्टी में न बहे खून
 माँ की संतानें आपस में न मचाएँ हत्याकांड
 काल पुरुष हे देवदेव! कृपा करें हम पर
 क्रोध न करें, करुणा भाव अपना लें।
 प्रदान करें शांति, बेचारी धरती को मिले सुख
 तेरी संतानों को प्रदान करें, केवल करुणा।
 तप्त हृदयों में बरसा दे स्नेहाद्रता
 ज़रा-सा आश्वासन मिले "वसुधैव कुटुंबकम्"।

तमाम भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों, देश भर के कलाकारों तथा मीडिया के कार्यकर्ताओं ने यदा-तदा अपनी संस्कृति पर पड़े धक्कों के प्रति हमें सजग करके सही रास्ता दिखाने का सराहनीय प्रयास किया है। सच्चे साहित्यकारों, कलाकारों व माध्यमकर्मियों का धर्म भी वही है। क्षयग्रस्त और क्षतिग्रस्त होते जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक संस्थाओं को मानवीयता की ऊर्जा और ऊष्मा देकर पुनरुज्जीवित करना हर देशवासी का दायित्व है। तभी हम अपनी पुरानी गरिमामय और महिमामय संस्कृति पर गर्व का अनुभव कर पाएँगे। सुनहला अतीत हमारे वर्तमान को सुदृढ़ बनाएगा तथा अतीत र वर्तमान से प्रेरणा पाकर हमारा भविष्य भी जाज्वल्यमान बन जाएगा। चाहे हम अधुनातन प्रगति के उत्तुंग शिखर पर चढ़ जाएँ तो भी हमें चाहिए कि अपनी संस्कृति के मूल को न भूलें।

हिंदी का भारतीय एवं वैश्विक स्वरूप :

यथार्थ और चुनौतियाँ

डॉ. प्रो.शम्भुनाथ तिवारी, अलीगढ़



“हिंदी,
इस विशाल स्वाभिमानी राष्ट्र भारत के भाल पर
सुशोभित सिरमौर है,
इसका भला किसी से क्या मुकाबला
इसकी तो बात ही कुछ और है।
हिंदी में गजब का मिठास है,
क्या खूब रवानी है,
हिंदुस्तान की रग-रग में बहती हुई हिंदी
सिर्फ एक जुबान या भाषा नहीं,
है पूरा का पूरा संस्कार,
जो निर्मलता में गंगा का बहता हुआ पानी है।
हिंदी हमारा अस्तित्व,
हमारा गौरव, हमारी शान, हमारी अभिलाषा है,
गरज यह कि
दुनिया के अनेक देशों में बोली जानेवाली हिंदी
हमारे देश की राष्ट्रभाषा (?) है।”
(हिंदी का आत्मसंघर्ष)

“महात्मा गाँधी ने कहा था- समूचे राष्ट्र के साथ व्यवहार करने के लिए हमें भारतीय भाषाओं में से एक ऐसी भाषा या जुबान की जरूरत है, जिसे आज ज्यादा से ज्यादा तादाद में लोग जानते और समझते हों और बाकी लोग जिसे झट सीख सकें। इसमें शक नहीं कि हिंदी ऐसी ही भाषा है।”(1945 में महात्मा गाँधी द्वारा दिए गए भाषण का अंश)
गाँधीजी का कथन हिंदी की व्यापकता, सार्वभौमिकता, महत्ता एवं उसकी सर्वस्वीकार्यता की और संकेत करता है। भारतीय संवेदना की संवाहिका के रूप में हिंदी का राष्ट्रीय- अंतरराष्ट्रीय फलक बहुत विस्तृत है, यह खुसरौ, अली कलंदर, मुल्ला दाउद, बाबा फरीद, अब्दुरहमान, शेख मंज़न, शेख हमीदुद्दीन नागौरी, नूर मुहम्मद, जायसी, कबीर,

उस्मान, शेख नबी, रहीम, रसखान, रसलीन, मुबारक मुहिम खाँ प्रीतम, निजामुद्दीन मधनायक, बरकतुल्ला प्रेमी, ताज बेगम, मु. आरिफ जान, शेख पियारा, कासिम शाह की भाषा है, तो गुरु तेग बहादुर, गुरु नानक, गुरु गोविंदसिंह की भी भाषा है। यह जॉन गिलक्रिस्ट, फ्रेडरिक पिनकोट, पीटर वरानिकोव- (रूस), फादर कामिल बुल्के(बेल्जियम), रोनाल्ड स्टुअर्ट मेकग्रेगॉर (न्यूजीलैंड), जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन(आयरलैंड) की भाषा है, तो प्रो.ओडोलोन (चेक), लोथार लुत्से (जर्मन), हेलमुट नेरिपताल (जर्मन), यूईचिरामिक (जापानी), अकियो हागा (जापान), गार्सा दतासी, बौदविल (फ्रेंच), ताबियाना रुत्कोवस्की(पोलिश), इमरै बंधा (हंगरी), प्रोफेसर च्यांग चिंगख्वेइ (चीन), चिंतिन हॉन (चीनी) की भी भाषा है। हमारे देश में हिंदी को सर्वाधिक दुलार अहिंदी भाषियों से प्राप्त हुआ है, जहाँ उसके प्रबल समर्थकों में कमोबेश सभी बड़े नाम अहिंदी भाषियों के हैं— राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, अनंतशयनम् आर्यंगार, पं. कृ. रंगनाथ पिल्लयार, लक्ष्मण नारायण गर्दे, बंकिमचंद्र चटर्जी, दयानंद सरस्वती, माधवराव सप्रे, बालगंगाधर तिलक, रवींद्रनाथ टैगोर, आचार्य क्षितिमोहन सेन, महात्मा गाँधी, वल्लभभाई पटेल, राजगोपालाचारी, (जस्टिस) कृष्णस्वामी अय्यर, अवनींद्रकुमार विद्यालंकार, अनंत गोपाल शेवडे, केशवचंद्र सेन पुरुषोत्तमदास टंडन, सुभाषचंद्र बोस, सुनीतिकुमार चटर्जी, काका कालेलकर, डॉ. मलिकमोहम्मद, डॉ. जाकिर हुसैन सरीखे लोग हिंदी के प्रबल समर्थक रहे हैं

हिंदी भारत की ही नहीं विश्व में भी एक बहुत बड़े भूभाग की भाषा है। पूरी दुनिया में लगभग सत्तर करोड़ लोगों द्वारा व्यवहृत हिंदी का परिवार बहुत विशाल है, मारीशस, फीजी, डच गुयना(सूरीनाम) त्रिनिनाड, टोबैगो, कंबोडिया, सूरीनाम, पोलैंड, नेपाल आदि देशों में हिंदी बोली और समझी जाती है। दुनिया के कमोबेश चालीस से भी अधिक देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। अमेरिका के 24 विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त ओटावा (कनाडा), मास्को (रूस), ओस्लो (नार्वे), टोक्यो (जापान), पेइचिंग (चीन), वारसा (पोलैंड), बर्लिन (जर्मनी), ज्यूरिख (स्विटजरलैंड), कोपेनहेग (डेनमार्क), वेनिस (इटली), बुडापेस्ट (हंगरी) आदि विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन और शोधकार्य हो रहा है। बी.बी.सी. लंदन, चीनी रेडियो, सिलोन रेडियो, मास्को रेडियो, वायस ऑफ मेरिका, नेपाल रेडियो इत्यादि से हिंदी का प्रसारण होता है। विश्व के अनेक देशों से हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं, जिनमें पुरवाई, अमरदीप (इंगलैंड), जीवनज्योति (त्रिनिनाड), बसंत, आक्रोश, आर्योदय, इंद्रधनुष (मारिशस), प्राचीप्रकाश, ब्रह्मभूमि (वर्म), सर्वोदय(जापान), परिचय, स्पाइल, शांतिदूत, त्रिवेणी(नार्वे), विश्वा, विश्वविवेक, सौरभ, विश्वशांति(उत्तरी अमेरिका), हिंदी चेतना(कनाडा), प्रयास (कनाडा), भारत दर्शन (न्यूजी लैंड), इनकलाब (नेपाल), के नाम प्रमुख हैं। (गगनांचल, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् नई दिल्ली, अंक जनवरी-मार्च 2002 में प्रकाशित सूचना के आधार पर)

हिंदी को विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करने के क्रम में विश्वहिंदी सम्मेलनों और अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलनों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। हिंदी को विश्व-संवाद की अतिमहत्वपूर्ण भाषा बनाने की दिशा में महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय

विश्वविद्यालय, वर्धा जैसी संस्थाओं द्वारा महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी की गरिमामयी उपस्थिति दर्ज करवाने, विश्व-बौद्धिक विरादरी में उसका प्रभावी हस्तक्षेप सुनिश्चित करने, सूचना-तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी की भाषा के रूप में उसे विकसित किए जाने, शोधसमीक्षा, अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से हिंदी को अंतरराष्ट्रीय हैसियत दिलाने, विश्व के समस्त हिंदी संस्थानों एवं विद्वानों को एक सूत्र में जोड़ने आदि में उक्त विश्वविद्यालय एक चुनौती के रूप में स्वीकार कर रहा है। इस विश्वविद्यालय के कुलाधिपति प्रोफेसर नामवर सिंह की चिंता भी उसके अंतरराष्ट्रीय स्वरूप, परिवेश और उपयोगिता को लेकर कम नहीं है- *“महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय को वैश्विक स्तर पर हिंदी को चुनौती के रूप में स्वीकार करते हुए उसके समग्र विकास के लिए बहुत व्यापक सोच के साथ एक लक्ष्यभेदी दिशा में कार्य करना है, वरना मुझे डर है कि इसका स्वरूप अंतरराष्ट्रीय क्या, कहीं क्षेत्रीय बनकर न रह जाए।”* (बातचीत का एक अंश) ऐसा इसलिए कि इक्कीसवीं सदी का भारत हिंदी के वगैर विश्व फलक पर अपना शीर्ष स्थान नहीं बना सकता।

विश्व स्तर पर इतने प्रसार और विस्तार के बावजूद, हमारा देश भारत हिंदी को अभी समग्रता से अपना नहीं सका है। अभी भी विज्ञान, तकनीकी, प्रौद्योगिकी की भाषा पूरी तरह हिंदी नहीं है, और तो और निजभाषा, निजगौरव, निजसंस्कृति, निजस्वाभिमान, निजराष्ट्र का सगर्व उद्घोष करनेवाले हमारे देश भारत में हिंदी को राष्ट्रभाषा का संवैधानिक दर्जा अभी प्राप्त नहीं है। हम भारतेंदु हरिश्चंद्र के आह्वान को अपेक्षित रूप से सार्थक दिशा में अभी तक गतिशील नहीं कर सके हैं, जहाँ उन्होंने कहा था- *“निजभाषा उन्नति अहे सब उन्नति को मूल / बिन निजभाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूला”* (बलिया- मेले में दिए गए भाषण में राष्ट्रभाषा- गौरव का उद्घोष) इसके बगैर हिंदी के विकास और संवर्धन के लिए किए जानेवाले सभी दावे-प्रतिदावे व्यर्थ हैं। हिंदी को लेकर एक ईमानदार कोशिश किए जाने की आवश्यकता है, क्योंकि वह हमारी अस्मिता, हमारी पहचान, हमारा सम्मान, हमारा राष्ट्रीय चरित्र है।

किसी भी देश की राष्ट्रीय पहचान के लिए यह जरूरी है कि उस देश की एक सर्वमान्य भाषा हो, जो उसकी समस्त विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करती हो। ऐसी ही भाषा को राष्ट्रभाषा का सम्मान प्राप्त होता है। उसी राष्ट्रभाषा के माध्यम से किसी राष्ट्र का राष्ट्रीय चरित्र, उसकी भावनात्मक एकता, उसके रीतिरिवाज, उसकी सभ्यता-संस्कृति, और सबसे बढ़कर उसका गौरव-सम्मान प्रकट होता है। किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रभाषा उस राष्ट्र का प्रतीक बनकर विश्व-समाज में उसे मानसम्मान दिलाती है। जिस देश की अपनी सर्वमान्य भाषा नहीं होती, उस देश की विश्व समुदाय में कोई पहचान नहीं होती। किसी राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के मन में अपनी राष्ट्रभाषा, के प्रति बेहद सम्मान, आदर और भावनात्मक लगाव होता है। इस आंतरिक जुड़ाव के कारण ही वह उसकी रक्षा, उसकी उन्नति एवं उसके विकास के लिए समर्पित भाव से तत्पर रहता है।

यह जानना शायद बहुत रोचक और दिलचस्प होगा कि इंग्लैंड के वर्तमान राजवंश के प्रथम शासक सम्राट जार्ज

प्रथम का संसद में दिया गया जर्मन भाषा में भाषण वहाँ की जनता ने सुनने से मना कर दिया था, ऐसा तब जबकि जर्मन होने के कारण जार्ज प्रथम अँगरेजी जानते ही नहीं थे। आयरलैंड के बहुत बड़े नेता डी बेलेरा ने अपने राष्ट्र की मृतप्राय भाषा गैलिक को पहले एक मोची (उसके अलावा और कोई गैलिक को उस समय जानता नहीं था) से सीखा, फिर उसे राष्ट्रभाषा की पदवी पर प्रतिष्ठित किया। विचारणीय है कि उसी आयरलैंड की धरती ने अँगरेजी साहित्य को गोल्डस्मिथ, शेरिडन, शाएट्स और आस्करवाइल्ड जैसे महान् साहित्यकार दिए हैं। इस दिशा में एक प्रमुख उदाहरण यहूदियों का है। उन्हें जब इजराइल का राष्ट्र प्राप्त हुआ, तब उन्होंने वहाँ की मूल भाषा-मातृभाषा हिब्रू को पुनरुज्जीवित करके उसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया। स्मरणीय है कि यहूदियों में विश्व को स्पिनोजा जैसा प्रख्यात दार्शनिक, न्यूटन और आइंस्टीन जैसा विश्वविख्यात वैज्ञानिक, कार्लमार्क्स जैसा चिंतक-विचारक, डिजराइली जैसा राजनीतिज्ञ, फ्रायड जैसा मनोवैज्ञानिक दिया है। उपर्युक्त राष्ट्रों का अपनी-अपनी भाषा से राष्ट्रगत स्वाभिमान जुड़ा हुआ था।

जिस तरह जापान की राष्ट्रभाषा जापानी, चीन की राष्ट्रभाषा चीनी, जर्मनी की राष्ट्रभाषा जर्मन रूस की राष्ट्रभाषा रूसी, इंग्लैंड की राष्ट्रभाषा अँगरेजी है, उसी तरह ही हमारे देश की पहचान हमारी भावनात्मक एकता की प्रतीक हिंदी हमारे देश की राष्ट्रभाषा है। हिंदी हमारे देश के प्रत्येक नागरिक के मन में राष्ट्रीयता एवं भाईचारा का भावना जगाती है। राष्ट्रभाषा हिंदी हमारे राष्ट्र की आत्मा है, जिसके बिना देश की साँसें अवरुद्ध हो जाएँगी। पूरे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधलेने की शक्ति के कारण हिंदी का प्रभाव एवं प्रवाह हर प्रांत, हर क्षेत्र में दृष्टिगत होता है। मैं राष्ट्रभाषा हिंदी के उस स्वरूप की चर्चा नहीं कर रहा हूँ, जो उसे आजादी मिलने के बाद राजकीय संरक्षण के बलबूते पर राष्ट्रभाषा (सही मायने में राजभाषा) की घोषित पदवी के रूप में प्राप्त हुआ, क्योंकि वह तो सियासी दाँवपेच का शिकार होकर आज तक विवाद और बहस का बेटुका मुद्दा है। मैं तो आजादी से पूर्व बहुत पहले से ही राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीय संपर्क की भाषा, राष्ट्र के संस्कार की भाषा, राष्ट्र के पहचान की भाषा, भक्ति आंदोलन की भाषा, आजादी की अलख जगानेवाले आजादी के दीवानों की भाषा, पूरब- पश्चिम- उत्तर- दक्षिण को एकता के सूत्र में बाँधनेवाली भाषा, स्वतंत्रता संघर्ष में किए गए प्रण की भाषा, जन-जन द्वारा की प्रतिज्ञा की भाषा, पूरे राष्ट्र को एकाकार कर देनेवाली जनभाषा-राष्ट्रभाषा हिंदी की बात कर रहा हूँ। तब हिंदी भाषायी विवाद में नहीं उलझी थी। उस पर क्षेत्रीय या सीमित प्रदेश की भाषा होने का राजनीतिक आरोप नहीं लगा था। तब राष्ट्रभाषा की वास्तविक पदवी से विभूषित हिंदी को हिंदीवालों से ज्यादा दुलार-प्यार अहिंदीवालों ने प्राप्त हुआ था, जिनके कारण हिंदी बहुत पहले से जन-जन में लोकप्रिय होकर राष्ट्रीय अभिव्यक्ति का माध्यम हो चुकी थी। बात तब बिगड़ी जब हिंदी और हमारे बीच अँगरेजी आ गई। वर्ना—

“ आजादी से पहले
जो हिंदी

इस देश की पहचान थी, कवियों, शायरों क्रांतिकारियों की
यकसाँ प्यारी जुबान थी।

आजादी के बाद आखिर कैसी हवा चल गई।
जंगे-आजादी में अँगरेजों के खिलाफ
हिंदी में कसम खानेवालों की नीयत
यकायक बदल गई।
अँगरेज अपनी साजिश का पुलिंदा फेंककर चला गया।
नतीजतन, हमारा देश,
भाषा के नाम पर बेतरह छला गया।
भाषा के झगड़े में जूझते
इस देश के साथ कैसा भद्दा मजाक है।
जुवान की साजिश पर खड़े,
मजहब के नाम पर बँटे मुल्क का नाम
आज पाक (?) है।” (वही)

पहले सब कुछ ठीक था, पर आजादी मिलने के बाद जब संविधान के अंतर्गत हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में सरकारी मान्यता देने की बात उठी, तो उस पर राजनीति का ऐसा गाढ़ा रंग चढ़ा, जिसने इस मुद्दे को राष्ट्रीय विवाद और प्रांतीय संघर्ष का बहुत बड़ा कारण बनाकर प्रस्तुत किया। राजनीतिक स्वार्थ ने सवाल पैदा किए कि हिंदी ही राष्ट्रभाषा, क्यों? राजनीतिक महत्वाकांक्षा ने हिंदी के समकक्ष एवं समानांतर एक नहीं, दो नहीं, पंद्रह-पंद्रह राष्ट्रभाषाएँ लाकर खड़ी कर दी। भाषा के नाम पर हम क्या खूब ही बँटे!

“ राजनीति की सतरंजी विसात नें
हमें आपस में ही
एकदूसरे से काट दिया है ,
जो देश पहले हर तरह से एक था ,
अहले सियासत ने
उसे भाषा के नाम पर,
टुकड़ों में बाँट दिया है!”(वही)

हालाँकि हमारे भावुक मन ने स्वीकार लिया है कि हिंदी ही हमारी राष्ट्रभा है, पर अनसुलझा विवाद आज तक यथावत है। इसके पीछे सबसे बड़ा वजह अँगरेजी है, जो न केवल हिंदी, वरन भारत की समस्त भाषाओं को चुनौती दे रही है। समस्या सिर्फ हिंदी और अँगरेजी की नहीं है, अँगरेजी और भारतीय भाषाओं की है, अँगरेजी और राष्ट्रीय स्वाभिमान की है, अँगरेजी और राष्ट्रीय अस्मिता की है, अँगरेजी और राष्ट्रीय गरिमा की है, अँगरेजी और स्वतंत्रता संघर्ष

में किए गए प्रण की है, अँगरेजी और भारतीय संविधान में की गई प्रतिज्ञा की है, अँगरेजी और भारतीय लोकतंत्र-प्रजातंत्र की है। यह कितना आश्चर्यजनक तथ्य है कि हिंदी का विरोध और अँगरेजी का समर्थन, अँगरेजों के रहते औपनिवेशिक भारत में नहीं, बल्कि उनके जाने के पश्चात् स्वतंत्र भारत में हुआ। हालाँकि हिंदी का विरोध और अँगरेजी के समर्थन की नींव बहुत पहले औपनिवेशिक शासन में ही पड़ चुकी थी, जिसे ब्रिटिश सत्ता का खुला समर्थन प्राप्त था। हिंद-अँगरेजी के नाम पर उत्तर-दक्षिण को बाँटने की साजिश और दागबेल अँगरेजों की डाली हुई है, जिसके दुष्परिणाम आज तक भी दिखाई देते हैं--“1937 में जब कांग्रेस मंत्रिमंडल बना तो राजगोपालाचारी ने स्कूलों में हिंदी को अनिवार्य रूप से प्रारंभ किया, जिसके कारण आत्मसम्मान आंदोलन का रवैया उनके मंत्रिमंडल के विरुद्ध उग्र हो गया--- कांग्रेसी मंत्रिमंडल के विरोध को ब्रिटिश सरकार और जस्टिश पार्टी ने समर्थन दिया, जिसके कारण वह आंदोलन हिंसक हो गया 1938 में हिंदी विरोधी आंदोलन में स्वयंसेवकों ने गिरफ्तारियाँ दीं, जिसके कारण द्रविड़ संप्रदाय के वर्गों में और एकता स्थापित हो गई, लेकिन इसने मद्रास में हिंदी-विरोधी बीज बो दिए, जिसका अंत आज तक नहीं हो पाया है।” (सत्या एम.राय, भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, पृ.527) बाद में 1965 में तमिलनाडु का हिंदी-विरोधी और अँगरेजी समर्थक दंगा इस संघर्ष की चरम परिणिति कहा जा सकता है। संसार की एक प्रमुख भाषा के रूप में हम अँगरेजी का सम्मान करते हैं, इससे भला किसे ऐतराज हो सकता है, पर उसके कारण हिंदी का गौरव और अधिकार छिन जाए, यह चिंतनीय है। हिंदी ही क्यों, सभी भारतीय भाषाओं का महत्व धूमिल करने में इस अँगरेजी का ही हाथ है, जिसने भाई-भाई को पृथक किया है।

“ भाषा के नाम पर
अपनी रोटियाँ सेकनेवालों की जुबान में
कोई तर्क नहीं है,
वर्ना, कौन नहीं जानता,
देश के अलग-अलग सूबों में रहने और
लग-अलग जुबान बोलनेवाले दो भाइयों के बीच
कोई फर्क नहीं है।”(वही)

यहाँ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का बहुत कथन प्रासंगिक प्रतीत होता है - “ इसलिए यह खूब अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि हिंदी का प्रचार और प्रसार किसी भी प्रादेशिक भाषा, के प्रचार और प्रसार का विरोधी नहीं है। दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। दोनों का उद्देश्य एक है। किसी भी प्रादेशिक भाषा बोलनेवालों के मन में यह भाव नहीं पैदा होने देना चाहिए कि हिंदी का प्रचार उनके लिए क्षतिकर हो सकता है। जो लोग ऐसा कहते हैं वे देश की एकता पर ही कुठाराघात करते हैं।”(विश्वभाषा हिंदी, संस्कृति और समाज, पृ.58)

हम लोगों में से यह बात कितने लोग जाते हैं (आज की युवा पीढ़ी तो शायद पूरी तरह अनभिज्ञ ही है) कि भारत में हिंदी को राष्ट्रभाषा का संवैधानिक दर्जा अभी तक प्राप्त नहीं है। हिंदी आदर्श रूप में भावनात्मक स्तर पर राष्ट्रभाषा भले ही मान ली गई हो, पर यथार्थ यह है कि 'राजभाषा अधिनियम 1963 ई.' ने सरकारी या राजकीय तौर पर हिंदी को राष्ट्रभाषा के संवैधानिक पद पर बिठाने के सारे दरवाजों को बहुत मजबूती से बंद कर दिया है। आइए, देखते हैं कि यह 'राजभाषा अधिनियम-1963' आखिर है क्या ?

कहने को तो कानूनी तौर पर 14 सितंबर 1949 को हिंदी भारत संघ की 'राजभाषा' (Official Language / Language of The State) स्वीकार कर ली गई (इसी को कुछ भावुकमना हिंदी प्रेमी हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देना बतलाते हैं और सगर्व कहते हैं कि 14 सितंबर 1949 हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा बन चुकी है), पर संविधान लागू होने के 15 वर्ष (1965 ई.) तक उसके साथ अँगरेजी की अनिवार्यता लागू कर दी गई। भारतीय संविधान में हिंदी 'राजभाषा' (भारतीय संघ के राजकाज की भाषा), अर्थात् लैंग्वेज ऑफ द स्टेट, के रूप में मौजूद है, न कि 'राष्ट्रभाषा' (लैंग्वेज ऑफ द नेशन या नेशनल लैंग्वेज) के रूप में। गरज यह कि हिंदी आज भी 'राष्ट्रभाषा' नहीं, 'राजभाषा' है।

संविधान के भाग-17 में अध्याय-1 के अंतर्गत अनुच्छेद-343 के उपबंध 1-2-3, में व्यवस्था है-(1) संघ की राजभाषा(लैंग्वेज ऑफ द स्टेट) हिंदी एवं लिपि देवनागरी होगी, अर्थात् लैंग्वेज ऑफ द नेशन नहीं, लैंग्वेज ऑफ द स्टेट। (2) संविधान लागू होने से 15 वर्ष तक अँगरेजी की अनिवार्यता वनी रहेगी।(3)अँगरेजी के प्रयोग को आगे जारी रखने के लिए संसद को नियम बनाने का अधिकार रहेगा। (विशेष संदर्भ के लिए देखिए, भारत का संविधान –हिंदी अनुवाद, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, संशोधित संस्करण 2000 के भाग- 17 का तत्संबंधी विवरण) संभवतः इसी अधिकार से बाद में राजभाषा अधिनियम-1963 ई. द्वारा अँगरेजी को हमेशा जारी रखने के लिए प्रावधान प्रस्तुत किया गया। संविधान में यह व्यवस्था की गई कि सन् 1965 ई. के बाद संसद की समस्त कार्रवाई केवल हिंदी में निष्पादित होगी, बशर्ते संसद कोई अन्यथा नियम या व्यवस्था न बना दे।

होना तो यह चाहिए था कि उसी समय (14 सितंबर 1949 को ही) संविधान में हिंदी को राष्ट्रभाषा (लैंग्वेज ऑफ द नेशन) स्वीकार कर लिया जाता और उसके साथ अँगरेजी की बैसाखी वाला उपबंध न जोड़ा जाता ,पर ऐसा न हो सका। हमारे साथ या हमारे बाद स्वतंत्र हुए अनेक राष्ट्रों ने अपने-अपने राष्ट्र की भाषा घोषित कर दी, पर हमारी राजनीतिक तुषटीकरण की नीति ने सबको प्रसन्न करने के फेर में पड़कर सभी को रुष्ट कर दिया। भाषायी प्रांतवाद ने हिंदी पर क्षेत्रीय, सीमित, गँवारू, विपन्न, कमजोर, सामर्थ्यहीन होने का आरोप मढ़ डाला। यही तो है हिंदी की राजनीति—

*“हिंदी के लिए जानबूझकर
नफरत फैलानेवालों की नीयत में*

कोई गहरा खोट है,
ऐसा लगता है कि
उनके लिए हिंदी भी शायद
महज एक वोट(ओट) है।”(वही)

\ हिंदी के पंद्रह वर्ष के निष्कासन की अवधि (सन् 1965) अभी दूर थी कि सन् 1963 में राजभाषा अधिनियम-1963 संसद में पारित हो गया। इसके अंदर व्यवस्था दी गई –

- (1) हिंदी के साथ अँगरेजी प्रयोग सदा के लिए अनिवार्य होगा। संसद में भी इसके लिए अनुमति होगी।
- (2) भारत में केवल हिंदी ही राष्ट्रभाषा नहीं है, वरन् पंद्रह अन्य राष्ट्रभाषाएँ भी हैं।
- (3) जब तक भी राज्य हिंदी के राष्ट्रभाषा बनने का विरोध करेगा, तब तक उसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार नहीं किया जाएगा। (संदर्भ-संसद में पारित प्रमुख अधिनियमों के अंतर्गत राजभाषा अधिनियम-1963)

यहाँ नियम/उपबंध संख्या (3) के संबंध में कुछ कहना ही व्यर्थ है। संसद में इस अधिनियम का विरोध करनेवाला सेठ गोविंददास के अलावा और कोई नहीं था, जो काँग्रेसी सांसद होने के बावजूद इस अधिनियम का विरोध किया और कहा – “ मैं इस अधिनियम के समर्थन करके जीते जी जहर नहीं खा सकता। ” राष्ट्रभाषा (?) हिंदी का यही यथार्थ रूप है। यहाँ यह कहावत पूरी तरह चरितार्थ हो रही है – ‘न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी।’ स्थिति आज भी यथावत ज्यों की त्यों है। जब तक मूल स्थिति में परिवर्तन नहीं होता, ‘राजभाषा अधिनियम -1963’ में यथोचित एवं अपेक्षित संशोधन वहीं किया जाता, तब तक हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने या होने के सभी दावे-प्रतिदावे करना बेमानी है।

हिंदी को सीमित क्षेत्र की, क्षेत्रविशेष की भाषा कहनेवालों को यह बता देना पर्याप्त होगा कि हिंदी का सबसे पहला समर्थन बंगाल से आरंभ हुआ था। इसके बाद गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब सहित भारत के अनेक अहिंदी प्रांत भी इस दिशा में आगे आए। आज भारत का कोई ऐसा प्रांत नहीं, जहाँ हिंदी बोली और समझी न जाती हो। हाँ, राजनीतिक कारणों से न बोलने, न समझने, न जानने का बहाना बहाना करना अलग बात है। हिंदी पूरे देश में एक साथ एक समान समझी जाती है, क्योंकि, “ कश्मीर से कन्याकुमारी तक और राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात से उड़ीसा, बंगाल और असम तक इस देश में भाषा की लगभग एक ही धारा प्रवाहित होती है, पूरे देश में घूम आइए, आपका काम हिंदी बोलकर बड़ी आसानी से चल जाएगा। हिंदी भाषा के मूल में संस्कृत के साथ-साथ अन्य सभी भारतीय भाषाओं के शब्द और संस्कार मिल जाएँगे। (शेरजंग गर्ग, हिंदी भाषा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, आजकल, नई दिल्ली, सितंबर 2004 पृ.7) ”

हिंदी का स्वरूप आज भारतीय ही नहीं, वरन् अंतरराष्ट्रीय हो चुका है, सर्वे बताते हैं कि बोलने-समझनेवालों की दृष्टि से हिंदी का स्थान विश्व की भाषाओं में प्रथम है – “ विश्व में हिंदी प्रयोग करनेवालों की संख्या चीनी से भी अधिक है और

हिंदी अब प्रथम स्थान पर है।” (जयंतीप्रसाद नौटियाल का लेख, दैनिक हिंदुस्तान, 25 अप्रैल 2005)

बावजूद इसके हिंदी को अपने ही घर भारत में अपेक्षित सम्मान और स्थान प्राप्त नहीं हो सका है। हिंदी को विश्वभाषा, अंतरराष्ट्रीय भाषा, संयुक्तराष्ट्रसंघ की भाषा बनाने की पैरवी करनेवालों को पहले उसे भारत की राष्ट्रभाषा बनाने की वकालत करनी चाहिए, जो वह आज भी नहीं है। संवैधानिक दृष्टि से हिंदी को राष्ट्रभाषा होने का गौरव आखिर कब तक प्राप्त होगा? यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है। बोलनेवालों की दृष्टि से दुनिया भर में प्रसरित हिंदी भाषा को कुछ राजनीतिक कारणों से भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार न करना सत्य और यथार्थ को झुठलाना है। भारत की पहचान, प्रतिष्ठा, स्वाभिमान, सम्मान का प्रतीक बन चुकी हिंदी को उसका समुचित अधिकार, गौरव, स्थान, सम्मान, प्रतिष्ठा दिलाने के लिए आइए उद्घोषणा करें ---

*“केवल जुबाँ नहीं है स्वाभिमान है हिंदी,
हिंदोस्ताँ की आन-बान-शान है हिंदी।
हिंदी ही हमें विश्व में इज्जत दिलाएगी,
इस देश के हर शख्स की पहचान है हिंदी।”*